प्रकाशक—

सुन्दरलाल जैन

मैनेजिंग प्रोप्राइटर

मोतीलाल बनारसीदास

गायघाट-बनारस

मुद्रक—

पं० जानकीशरण त्रिपाठी

सूर्य प्रेस, लुलानाला, बनारस

'स्वर्ग की झलक' देखने वालों के नाम !

ऊपर से सुदृढ़ तथा भव्य प्रासाद बनाने वाले,

ठहर और देख कि तेरे प्रासाद की नींव नीचे में

खिसकी जा रही है !

दो बातें

दो वर्ष पहले 'जय-पराजय' लिखते समय ही मैंने सोचा था कि इस तरह का शायद यह मेरा पहला और अन्तिम नाटक ही होगा और यद्यपि आज उसकी दूसरी आवृत्ति चार हजार की हो रही है, और इस बीच में देश की सभी मुख्य-मुख्य पत्र-पत्रिकाओं ने विस्तृत समालोचनाएँ करते हुए उसका स्वागत किया है, तो भी आज वैसा नाटक लिखने को मेरा मन नहीं हुआ। इसका पहला कारण यह है कि जय-पराजय एक ऐतिहासिक नाटक है, और मेरे अपने विचार में आज हमें सामाजिक नाटकों की अधिक आवश्यकता है। ऐतिहासिक नाटकों का प्रचार सब देशों में प्रायः उस समय होता रहा, जब उनकी सामाजिक समस्याएँ इतनी विषम न थीं, या उन समस्याओं को समझने तथा उनका मनन करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी, या उनकी सामाजिक स्थिति इतनी दुखद थी कि उससे भाग कर वे अपने उज्ज्वल-अतीत में कुछ क्षण के लिये जा बसना, उसकी वैभव-शालिता में अपने आपको विस्मृत कर देना ही श्रेय-स्कर समझते थे। भारत में पिछला युग प्रायः ऐतिहासिक नाटकों का ही युग रहा है और इसका मूल कारण यही—वर्तमान से भाग कर अतीत में बसने की प्रवृत्ति है।

बंगला में स्व० डी० एल० राय के मुगल तथा राजपूत सम्बन्धी नाटक, हिन्दी में स्व० प्रसाद तथा श्री उदयशंकर भट्ट के भारत के स्वर्ण-युग सम्बन्धी तथा पौराणिक नाटक और उर्दू में सैय्यद इमत्याज़ अली ताज का प्रसिद्ध नाटक 'अनारकली' सब इस प्रवृत्ति के द्योतक हैं। ये सब कलाकार हमारे सामने हमारे उज्ज्वल अतीत को रख कर हमारे दुखी वर्तमान में हमें सान्त्वना देते हैं पर आज हमारा वर्तमान इतना निराशा-पूर्ण नहीं, राजनैतिक क्षितिज भी अपेक्षाकृत साफ है, और समाज की उन्नति के भी हम स्वप्न लेने लगे हैं। आज़ हमें मात्र-सान्त्वना नहीं चाहिये हमें आलोचना की भी आज काफी आवश्यकता है। आज हम एक Transitional Period (परिवर्तन-काल) से गुजर रहे हैं और अपने अतीत का गुण-गान करने के बदले हमारे लिये आवश्यक है कि हम अपने भविष्य की भी चिन्ता करें। समाज की कुरीतियों को दूर करके उसे स्वस्थ बनाते हुए उन्नति के पथ पर लेजाएँ। साथ ही यह देखें कि एक अतिरेक से निकल कर वह दूसरे अतिरेक में तो नहीं जा पड़ता और इस लिये आवश्यक है कि हम समाज की विभिन्न समस्याओं को छूने वाली रचनाओं का सृजन करें—फिर चाहे वे कथाएँ हों, उपन्यास हों, अथवा नाटक।

दूसरी बात यह भी थी कि जय-पराजय पुरानी शैली का नाटक था और इस लिए बहुत लम्बा था। मैंने उसे लिखते समय रंग-मंच का पूरा ध्यान रखा था और जैसा कि सम्पादक 'विशाल भारत' ने लिखा, यह खेला भी जा सकता है, पर यह मैं तब भी जानता था

अब भी जानता हूँ कि वह शायद ही पूरे-का-पूरा खेला
। खेलने के लिए उसे काफी संक्षिप्त करना होगा। और ऐसा
ने भूमिका में लिख भी दिया था। आज के खेलने वाले नाटकों
सबसे बड़ी खूबी, उनका अपेक्षा-कृत छोटा होना है,
। समय में जीवन का संघर्ष इतना विषम न था और
ों के पास समय भी काफी होता था। रात के ९ बजे से प्रातः
ीन-तीन बजे नाटक खेले जाते तथा देखे जाते थे, पर आज हमारे
इतना समय नहीं कि हम एक रात जाग कर खराब करें और
ा दिन सो कर। हम चाहते हैं, कम-से-कम समय में हमारा
यक से-अधिक मनोरंजन हो। सिनेमा इस आवश्यकता को पूरा
ा है। यदि समय के साथ ही भारत में नाटक के कर्णधार इस
का ध्यान रखते तो आज नाटक यों न पिछड़ जाता, क्योंकि
-मंच के सीमित होते हुए भी, इसकी अपील रजत-पट से अधिक है।
ओं की अपेक्षा हम सजीव व्यक्तियों के अभिनय में अधिक दिल-
पी ले सकते हैं। पश्चिम ने इस बात का ध्यान रखा है और
ी कारण है कि वहाँ रंग-मंच आज भी दर्शकों को सिनेमा से कम
ाकर्षित नहीं करता।

ला

नाटक के संक्षिप्त होते ही उसकी कला भी बदल गई है।
ामंच illusion (असत्य) तो है ही, पर आज का नाटककार
से, जहाँ तक सम्भव हो, सत्य के समीप रखने का प्रयास
रता है। वह पूरी-की-पूरी शताब्दी को दो घंटों

के अन्दर ही दिखाने और ऐसे कृत्रिम दृश्य देने के विरु
हैं, जो देखते ही असम्भव जान पड़ें। स्व० द्विजेन्द्रलाल राय
नाटक 'भीष्म', पितामह भीष्म के युवा काल से उनकी मृत्यु त
फैला हुआ है। उसमें पाँच अंक हैं। प्रत्येक अंक में आठ तक द
हैं; स्व० प्रसाद जी के नाटक चन्द्र गुप्त के एक अंक में १४
दृश्य हैं। आज के खेले जाने वाले नाटकों में ऐसा होना सम्भव नहीं

नाटक के संक्षिप्त होने के साथ ही उसका उद्देश्य भी बद
गया है। पहला नाटक उपन्यास के समीप था, आज का कहानी
समीप है। पहले नाटक में हम समाज का पूरा चित्र खींच सकते
व्यक्ति का पूर्ण चरित्र-चित्रण कर सकते थे, पर आज हम उनकी झांकी
मात्र दिखाते हैं और शेष दर्शक की कल्पना पर छोड़ देते हैं। इसके स
ही जहाँ पहले के नाटकों में ऐसी बातें भी आ सकती थीं जिन
मुख्य कहानी के साथ अधिक सम्बन्ध न हो, अथवा उपन्यास
भाँति जहाँ नाटक में एक साथ दो कथानक चल सकते थे, वहाँ आ
के नाटकों में व्यर्थ का एक वाक्य भी असह्य है। नाटक
समय, स्थान और अभिनय के ऐक्य तथा गठन की ओर अधि
ध्यान देते हैं। इसके साथ ही पुराने नाटकों की कृत्रिम बातें
जैसे व्यर्थ के गाने, स्वगत, टेबला आदि सब आज उड़ गा
और नाटक जीवन के अधिक समीप आ गया है।

जरूरत

मासिक 'हंस' के मेरे एक लेख का उत्तर देते हुए श्री जै
ने लिखा था कि जब रंग-मंच ही न हो तो रंग-मंच के नाटक

लिखे जायँ ! तब मैंने उत्तर दिया था, कि यदि आज लेखक रंग-मंच पर खेले जाने वाले नाटक लिखे तो कल रंग-मंच भी अपनी वर्षों की नींद से जाग उठेगा ! वास्तव में दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है ! आज यदि विविध स्कूलों तथा कालेजों में नाटक-क्लबें बन जाएँ तो शायद खेलने के लिये उन्हें हिन्दी में नाटक ही न मिलें। आज भी हमारे कालेजों में अंग्रेज़ी से अनूदित नाटक ही खेले जाते हैं। कारण यही कि उन्हें अपनी भाषाओं में उत्तम नाटक नहीं मिलते। मेरा अपना विचार तथा अनुभव है कि रंग-मंच को स्फूर्ति प्रदान करने का सबसे अच्छा साधन यह है, कि ऐसे नाटक अधिक संख्या में लिखे जाएँ जो रंग-मंच पर सुगमता से खेले जा सकें। गत-वर्ष मैंने 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी नाटक लिखा था जो इस अल्पकाल ही में सूरत, लाहौर तथा इलाहाबाद तीन जगह खेला गया। श्री रामकुमार वर्मा तथा श्री भगवतीचरण वर्मा के एकांकी भी सफ़लता पूर्ण खेले गए हैं।

'लक्ष्मी का स्वागत' की सफलता से प्रोत्साहित होकर मैंने यह अपेक्षाकृत लम्बा, चार अंक का नाटक लिखा है, और इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि यह आसानी से खेला जा सके, और इसे खेलने में व्यय अधिक न आए, और रंग-मंच में भी अधिक परिवर्तन न करने पड़ें।

प्रस्तुत नाटक

'स्वर्ग की झलक' एक सामाजिक व्यङ्ग है और चूँकि यह आधुनिक शैली का है, (पात्रों के चरित्र की या उनके चरित्र के एक

पहलू ही की झांकी-मात्र दिखाता है।) इस लिये, इस विचार से कि इसके उद्देश्य के सम्बन्ध में किसी तरह की गलतफ़हमी न पैदा हो जाए, मैं यहाँ दो बातें लिख देना आवश्यक समझता हूँ।

पहली बात नाटक के उद्देश्य के सम्बन्ध में है। हो सकता है कि नाटक को सरसरी नज़र से पढ़ने वाला यह धारणा बना ले कि नाटक आधुनिक नारी, अथवा शिक्षित नारी, अथवा आधुनिक शिक्षा के विरुद्ध लिखा गया है। ऐसे पाठकों से मैं निवेदन करूँगा कि वे उसे फिर ध्यान से पढ़ें।

नाटक का उद्देश्य शिक्षा अथवा आधुनिक नारी के विरुद्ध न होकर, उस मनोवृत्ति के विरुद्ध होना है, जो हमारे यहाँ की अधिक शिक्षित लड़कियों में पैदा होती जा रही है कि वे अपना बाहर संवारने के जोश में घर बिगाड़ती जाती हैं। इसके अतिरिक्त जैसा कि मैंने कहा; आज हम एक परिवर्तन-काल से गुजर रहे हैं, जिसमें शिक्षा के साथ बेकारी बढ़ती जाती है, और जब कि हम अपने संस्कारों को पूर्ण रूप से बदल नहीं पाए। आज प्रत्येक शिक्षित लड़की के लिए शिक्षित, पूर्ण रूप से आधुनिक, साथ ही धनी पति का मिलना कठिन है, इस लिये यदि उसे विवाह करके Normal (साधा) जीवन बिताना है तो उसे उस जीवन पर नाक-भौं न चढ़ाना चाहिए। उसे शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ उस जीवन की कठिनाइयों के लिये भी अपने आपको तैयार करना चाहिए, जब तक कि भारत सुसम्पन्न नहीं हो जाता और औसत दर्जे के नवयुवकों का रहन-सहन पर्याप्त रूप से ऊँचा नहीं उठ जाता। जहाँ

शिक्षा पाकर नारी स्वाभिमान, आत्म-विश्वास, व्यापक ज्ञान, तथा समाज-सेवा की भावनाएँ पाए, वहाँ उसे अपना मानसिक संतुलन भी कायम रखना चाहिए। तभी समाज में स्वस्थता कायम रह सकेगी।

दूसरी बात यह है कि इस नाटक में आधुनिक शिक्षित नारी के गुण-दोषों का विवेचन नहीं किया गया। उसमें बहुत से गुण हैं, पर वे इस नाटक की सीमा से बाहर हैं। नाटक छोटा है। आधुनिक है। जीवन की व्यापकता का यह दिग्दर्शन नहीं करा सकता। एक समस्या की झांकी-मात्र यह देता है और अपनी दृष्टि उसी समस्या पर केन्द्रित रखता है।

नाटक की भाषा को शिक्षित लोगों की भाषा के तनिक समीप रखने का प्रयास किया गया है, ताकि यह कृत्रिम प्रतीत न हो। इस लिये अंग्रेजी के शब्द अनिवार्य्य रूप से आ गए हैं और भाषा दुरूह तथा क्लिष्ट नहीं।

नाटक के पात्र भी हमारे परिवर्त्तन-काल के हैं जो न पूर्ण रूप से आधुनिक हैं न पूर्ण रूप से पुरातन और फिर नाटक एक व्यङ्ग है और व्यङ्ग नाटक को कुछ privileges (रियायतें) भी प्राप्त हैं। समालोचकों से मेरी विनय है कि वे नाटक की समालोचना करते समय इन बातों को न भूल जाएँ।

१८४ अनारकली
लाहौर
१० जून १९३९

विनीत—
उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

पात्र-परिचय

पात्र परिचय के स्थान पर कुछ देने के बदले मैं पाठकों से निवेदन करूँगा कि वे सीधे नाटक को पढ़ना आरम्भ कर दें। किसी प्रकार का कष्ट उन्हें न होगा। नाटक मैंने इस प्रकार लिखा है कि पढ़ने वाले इसमें कहानी का सा रस पाएँ और जो खेलना चाहें वे आसानी से खेल सकें। मुझे आशा है कि नाटक पढ़ कर, पाठकों को मेरा लीक से इतना सा हटना अखरेगा नहीं।

'अश्क'

पहला अङ्क

[पर्दे के धीरे धीरे उठने पर हम मध्यवर्ग के एक ड्राइङ्गरूम से परिचित होते हैं, जिससे एक साथ ही बैठने, उठने, कपड़े पहनने तथा सोने के कमरे का काम लिया गया है। यूरोप का मध्यवर्ग, विभिन्न कामों के लिये विभिन्न कमरों के सुख का उपभोग कर सकता है, पर भारत के मध्यवर्गीय को, जिसकी औसत आय वहाँ के श्रमी की औसत आय से भी कहीं कम होती है, यह सब कैसे प्राप्त हो? इसी लिये ड्राइङ्गरूम में तीनों आवश्यकताओं के अनुसार सामान सजा रखा है।

सामने की दीवार में अँगीठी है, जिस पर एक फूलदार कपड़ा बिछा हुआ है। इस पर दायीं से बायीं ओर को सुरुचिपूर्ण ढंग से शीशी, कंघी, शेविंग बक्स, क्रीम की शीशी, एक टाइमपीस, ताश का डिब्बा, कपड़े साफ करने का ब्रश और कुछ बच्चों के खिलौने रखे हैं।

अँगीठी के नीचे दीवार के साथ मेज लगी है, जिस पर कुछ पुस्तकें बिखरी पड़ी हैं। मेज के तीन ओर कुर्सियाँ हैं, जिन में से कुछ का मुँह मेज की ओर है और कुछ का दर्शकों की ओर। एक कुर्सी की पीठ पर पुरानी कमीज़ और दूसरी पर नयी पतलून पड़ी है क्योंकि गृहस्वामी लाला गिरधारीलाल का छोटा भाई रघुनन्दन अभी नहाने गया है।

बायीं ओर दीवार के साथ एक पलंग बिछा है, जो शायद रघु के पहले विवाह में आया था। इस पर श्वेत दुसूती की फूलदार चादर बिछी है और सिरहाना, इस समय जैसे इस साम्राज्य का एकाधिपति बना, आराम कर रहा है।

दायीं दीवार में खूँटियों पर कपड़े टँगे हैं, उन पर दो एक टाइयाँ बेपरवाही से रखी हैं। लटकते हुए कपड़ों के नीचे फर्श पर दो आराम कुर्सियाँ बिछी हुई हैं। सामने अँगीठी के दायीं ओर भी एक खूँटी है जिस पर कोट लटक रहा है।

बायीं ओर पलंग के पायँते में एक दरवाजा है, जो दूसरे कमरे को गया है। सामने वाली दीवार में मेज के दायीं ओर एक दरवाजा है, जो आँगन में खुलता है। दोनों दरवाजों पर कुछ सस्ते लकीर-दार पर्दे पड़े हैं।

अँगीठी पर रखे हुए टाईमपीस में इस समय साढ़े दस बज रहे हैं। साधारणतया लाला गिरधारीलाल इस समय तक अपनी दुकान पर जा चुके होते हैं, जो अनारकली में स्थित है और जिस पर लाहौर के सबसे अच्छे पेंटर द्वारा लिखा हुआ "गिरधारीलाल बूट हाऊस" का नया नया बोर्ड आने जाने वालों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। दुकान तो लाला गिरधारीलाल ने पहले लोहारी दरवाजे के अन्दर ही खोली थी, पर यह देख कर कि अनारकली में बजाजी, मनिहारी और चमड़े की दुकानों का ही बाहुल्य हो रहा है, वे भी अपनी दुकान यहीं उठा लाए थे। पहले पहल तो उनकी दुकान बड़ी बड़ी दुकानों में भिंची

हुई, कारों और ताँगों से उतरने वालों को दिखाई भी न देती थी, पर अब तो "गिरधारीलाल बूट हाऊस" बड़ी बड़ी आसामियों को आकर्षित करता है।

इस उन्नति को प्राप्त होकर भी लाला गिरधारीलाल वही पुराने विचारों के सीधे-सादे सरल व्यक्ति हैं। आज महीने का अन्तिम रविवार होने के कारण दुकान बन्द है, और इसी लिये उन्होंने भी आज छुट्टी मनाई है। रहा छोटा भाई रघु, तो प्रान्त के प्रसिद्ध अँग्रेजी दैनिक के सम्पादन-विभाग में होने के कारण, वह इस समय मीठी गहरी नींद के मजे ले रहा होता है। पर आज एक तो रात को उसे दफ्तर से छुट्टी है और दूसरे इतवार होने के कारण उसे अपने कई दोस्त मित्रों से मिलना है—जिनकी संख्या, उसकी पत्नी के स्वर्ग-वास और उसके एकदम संवाददाता से सम्पादक होने के बाद, उत्तरोत्तर बढ़ रही है—इसी लिये अपने स्वभाव के विपरीत रघु आज दस बजे से ही उठ कर शौचादि से निवृत्त हो नहाने चला गया है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद आँगन के दरवाजे से एक हाथ में साबुन की डिबिया और तेल की शीशी और दूसरे में तौलिया लिये नयी कमीज और लकीरदार पायजामा पहने चप्पल फटफटाते और काँपती आवाज में।

मैं बन का पंछी बन के बन बन बोलूँ रे
बन बन बोलूँ रे

गाते हुए जल्दी जल्दी रघु प्रवेश करता है।

आयु कोई अठाईस-तीस वर्ष, पतला छरेरा,
शरीर, गन्दमी रंग, तीखे नक्श और आँखों में
निरन्तर रतजगे के कारण प्रमाद की सी रेखा।

गाते गाते तेल और साबुन को अँगीठी पर रखता है और तौलिये से हाथ पोंछ कर उसे एक कुर्सी पर फैला देता है। तभी ला० गिरधारी लाल प्रवेश करते हैं—

कोई ४५, ४६ वर्ष के गम्भीर प्रकृति के
व्यक्ति हैं। रघु की अपेक्षा पेट भी उनका कुछ
अधिक आगे को बढ़ा हुआ है। गले में कमीज,
उस पर स्वेटर और कमर में नाईट सूट का
धारी दार पायेजामा।

चूँकि रघु उन्हें भाई साहिब कहकर पुकारता है इसलिये हमें भी उन्हें भाई साहिब कहने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये। भाई साहिब कुछ घबराये हुए हैं और आकृति उन की बता रही है कि वे किसी विशेष मामले पर बात चीत करने आये हैं।

रघु अपने गुनगुनाने में मस्त बाल बना रहा है]

भाई साहिब—मैं कहता हूँ, मैं दुकान पर रहता हूँ तो तुम घर पर रहते हो और मैं घर आता हूँ तो तुम दुकान पर चले जाते हो और सुबह-सुबह तुम्हें जगाया नहीं जा सकता। आखिर ये लोग जो मेरी जान खा रहे हैं, इन्हें क्या उत्तर दूँ? (भुजाएँ कमर के पीछे रखे कुछ क्षण चुप इधर उधर घूमते हैं फिर उसके पास आकर) मैं सोचता था तुम उठ कर मेरी ही ओर आओगे पर देख

रहा हूँ कि नहा कर कहीं सीधे बाहर जाने को हो ? मैं कहता हूँ तुम कोई निर्णय क्यों नहीं करते ?

रघु—(गाना बन्द करके) निर्णय ?

भाई साहिब—देखो, तुम्हारी पत्नी का देहान्त हुए आज दो वर्ष हो चुके हैं। वे लोग कब तक रुक सकते हैं, लड़कियाँ तो पलक झपकते बढ़ती हैं।

रघु—(चुप बाल बनाता है)

भाई साहिब—बात यह है कि किसी भले-मानस को अधिक देर तक खराब करके बाद में जवाब दे देना उचित नहीं। कल सुबह फिर शामलाल आया था।

[रघु शीशा कंघी वहीं अँगीठी पर रख देता है और कुर्सी से पतलून उठा कर जल्दी-जल्दी अन्दर कमरे में चला जाता है। भाई साहिब उसके पीछे जाकर दरवाजे के पास खड़े हो जाते हैं।]

भाई साहिब—देखो, मेरे विचार में तुम्हें अन्य रिश्तों का ध्यान छोड़, इसे ही स्वीकार कर लेना चाहिये। (कुछ क्षण घूमते हैं, फिर वहीं दरवाजे के पास आकर) रिश्तेदार हमारे देखे-भाले हैं, हम उन्हें और वे हमें जानते हैं, किसी प्रकार के ठाट-बाट की, किसी प्रकार की धूम-धाम की आवश्यकता नहीं, यदि हम कुछ अधिक शान बान न दिखा सके तो भी कोई नाम न धरेगा, बड़ी सुगमता आसानी से सब काम हो जाएगा। (फर तनिक घूमकर, धीमी

आवाज़ में जैसे समझाते हुए) और देखो, सब से बड़ी बात तो यह है कि साली अन्त में साली ही है, तुम्हारे बच्चे से, मौसी होने के नाते जो प्यार उसे हो सकता है, वह किसी अन्य लड़की को तो हो नहीं सकता। मेरे विचार में यदि तुम्हें विवाह करना है तो रक्षा से...

रघु—(पतलून पहन कर बाहर आते हुए) रक्षा से ? कदापि नहीं।

[खूँटी से टाई उठाकर शीशे में देख कर बाँधता है]

भाई साहिब—(उदासीनता से मुड़ते हुए) खैर तुम्हारी इच्छा, मेरा काम तो उनका संदेश देना था सो मैंने दे दिया।

(बाहर जाने लगते हैं।)

रघु—(टाई बाँधते बाँधते रुककर) लेकिन भाई साहिब......

भाई साहिब—(मुड़कर चिड़चिड़े स्वर में) मैं कहता हूँ, अब तुम्हारी इच्छा। मैंने तो उसे कल ही कह दिया था कि भाई वह हमारे कहने में बिल्कुल नहीं (मेज के कोने पर बैठ जाते हैं) कल सुबह शामलाल आया था। शगुन वह मुझे ही दे रहा था, पर मैंने उसे तब ही समझा दिया था कि रघु के मामले में मुझे अथवा उसकी भाभी को कुछ नहीं कहना 'कुछ' नहीं कहना, जहाँ उसका जी चाहे, जहाँ उसका मन मिले, विवाह करे ! हम न उसे करने को कहेंगे न छोड़ने को।

रघु—(टाई बाँधते बाँधते रुक कर) लेकिन भाई साहिब......

भाई साहिब—दोपहर को वह फिर आया, साथ उसके उसका

बड़ा भाई भी था। उन्हें संदेह था कि शायद मैं यह नाता पसन्द नहीं करता। मैंने उन्हें समझाया कि आप कभी भी यह ख्याल न करें। इसके विपरीत, हो सकता है कुछ कारणों से मैं इसे पसन्द ही करूँ, पर रघु को मैं विवश न करूँगा। न कहूँगा—करो, न कहूँगा—छोड़ो। हाँ, संदेश मैं आपका पहुँचा दूँगा।

[टाई बाँध कर रघु कुर्सी पर बैठ, जुरावें डालता है।]

भाई साहिब—वे अनुरोध करने लगे कि आप मान जाएँ तो हम रघु को जाकर मनालेंगे, किन्तु मैंने हाथ जोड़ दिये (हाथ जोड़ते हैं) कि आप उसे ही जाकर मनाइये!

('उसे' पर सिर हिलाते हैं)

रघु—(जुराब पहनते पहनते रुक कर) लेकिन भाई साहिब...

भाई साहिब—(उसी स्वर में) शाम को वह फिर आए, साथ उनके उनका पिता भी था। तब विवश हो कर मैंने उन्हें समझा दिया कि रघु आदमी अनोखे स्वभाव का है। अव्वल तो जो हम कहेंगे वह करेगा ही नहीं और यदि हमारे अनुरोध पर उसने रिश्ता स्वीकार भी कर लिया तो आयु-पर्य्यन्त हमें सूईयाँ चुभोता रहेगा कि मैं तो कभी विवाह न करता, यदि आप विवश न करते; या आप ने हाँ कर दी थी, इस लिए आप की बात रखने के लिये मैं फँस गया, नहीं अमुक लड़की कहीं अच्छी थी और जब भी अपनी पत्नी से किसी बात पर उसका झगड़ा हुआ और झगड़ा आप जानते हैं घरों में हो ही जाता है तो वह उसका सब दोष हमारे सिर मढ़ देगा।

रघु—(जो जुराबें पहन कर बूट पहन रहा है) लेकिन भाई साहिब.........

भाई साहिब—सो मैंने उन्हें कह दिया कि भाई आप हमें इस अग्नि-परीक्षा में न डालिये, बस जहाँ वह राजी वहाँ हम राजी।

रघु—लेकिन भाई साहिब, मैंने कब आपकी बात नहीं मानी ?

भाई साहिब—(और भी ऊँचे स्वर में) नहीं मानी—मैं पूछता हूँ, तुम कब हमारी बात मानते हो ? यदि हम कहें उत्तर को जाओ तो तुम जरूर दक्षिण को जाओगे। अब यदि शामलाल आया, या उसका भाई, या उसका बाप तो साफ इनकार कर दूँगा—साफ इनकार—हुँ !

(बेजारी से सिर हिलाते हैं)

रघु—(उठ कर खड़ा हो जाता है) लेकिन भाई साहिब, आप अन्याय करते हैं ! मैं सदा आपकी बात मानता हूँ, किन्तु यह जीवन भर का मामला है। एक बार बिना सोचे समझे इस अँधेरी खोह में कूद कर देख चुका हूँ। मैं आप ही से पूछता हूँ, आपको इस नाते में कोई आपत्ति नहीं ?

भाई साहिब—(फिर दिलचस्पी लेते हुए) नहीं, यदि तुम्हें पसन्द हो, तो हमें क्या आपत्ति हो सकती है ?

रघु—(नौकर को आवाज देता है) ओ बिरजू ! ओ बिरजू !!

(बिरजू प्रवेश करता है)

रघु—बूट ज़रा साफ़ करदे ! (भाई साहिब से) रहा, भाई साहिब, मुझसे भूली हुई तो नहीं ? साली तो वह मेरी ही है।

छः जमात वह पढ़ी नहीं.........

भाई साहिब—घर पर उसने भूषण की परीक्षा दी है......

रघु—भूषण ! (कहकहा लगातेहुए खूँटी से कोट उतारता है) मैं जानता हूँ। पत्र तक वह ठीक तरह से नहीं लिख सकती; बात करने, कपड़ा पहनने की उसे तमीज़ नहीं; चार मित्र आजाएँ तो लज्जा से दुबक कर अपने कमरे में जा बैठे। (कोट पहनते हुए) मैं पूछता हूँ अब फिर आप किस तरह मुझे चक्की का पाट गले बाँधने को कहते हैं ?

भाई साहिब—(उदासीनता से एक टाँग हिलाते हुए) मैं कब कहता हूँ ?

रघु—(नौकर से, जो जल्दी-जल्दी बूट साफ कर रहा है) वह हैट उठा ला बिरजू ! (भाई साहिब से) देखिए, विमला से मेरा कितना झगड़ा हुआ करता था (क्रीम की शीशी उठा कर उसे खोलता है) माना बाद को हम एक दूसरे को समझ गए थे, माना बाद को मुझे उससे प्रेम भी हो गया था, यह भी मान लिया कि बाद को हमारा वैवाहिक जीवन अपेक्षाकृत सुखी था (अँगुली से क्रीम मुँह पर लगाता है) पर तनिक उन दिनों की कल्पना कीजिए जब मेरा विवाह अभी-अभी हुआ ही था। वह पहला वर्ष, (जोर जोर से मुँह पर क्रीम मलता है) उसकी कल्पना मात्र से मेरे प्राण काँप जाते हैं। हम कितना लड़ते झगड़ते थे; कितनी बार आपको और भाभी को हम दोनों में समझौता कराना पड़ता था !

(फिर शीशे में देख कर जोर जोर से क्रीम मलता है)

भाई साहिब—(उसी उदासीनता से) हाँ, अच्छी तरह सोच विचार लो !

[भाभी अपने बच्चे को लिये छुनछुना बजाकर उसे चुप कराती हुई प्रवेश करती हैं। रघु नौकर से हैट लेकर अँगीठी से ब्रश उठा, उसे धीरे धीरे साफ करता है।

भाभी की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, सुन्दर और हँसमुख। चार बच्चों की माँ होने पर भी उनकी सुन्दरता में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। शायद नौकर होते हुए भी घर का सब काम अपने हाथ से करने के कारण, अथवा संतति में चारों लड़के ही पाने के निरन्तर उल्लास के कारण उनके ओठों पर एक स्वर्ण-स्मिति खेलती रहती है। साधारण शलवार कमीज और दुपट्टा पहने हैं। कमीज के ऊपर एक घर का बुना हुआ गहरे लाल रंग का छोटा सा स्वेटर भी है। कानों में लम्बे लम्बे काँटे हैं और हाथों में चूड़ियाँ। सिर का दुपट्टा चूँकि खिसक गया है, इसलिये बालों में सोने के क्लिप भी साफ दिखाई देते हैं।]

भाभी—(बच्चे को पुचकारते हुए) पुच, पुच !

रघु—(अपनी बात को जारी रखते हुए, भाई साहिब से)

और शिक्षित साथी की आवश्यकता मुझे पहले से कहीं अधिक है।

भाभी—इसमें क्या संदेह है ?

रघु—(भाभी की ओर मुड़ कर) क्या ?

भाभी—(उसकी बात का उत्तर दिये बिना नन्हे से) क्यों नन्हें चाची तुम्हें पढ़ी लिखी चाहिए अथवा अनपढ़ ?

रघु—(विवशता दिखाते हुए) आप लोग, भाई साहिब मेरी कठिनाई को बिल्कुल नहीं समझते ? देखिये, समाज में मेरा दर्जा पहले से कहीं ज्यादा ऊँचा हो गया है। स्थान-स्थान की ठोकरें खाने वाले, प्रायः अपमान को भी अपने व्यवसाय का अंग समझ कर चलने वाले, संवाददाता में और अपनी कुर्सी पर बैठे, सारे संसार को आलोचना की कलम से लताड़ देने वाले, सम्पादक में अन्तर है। न वे मित्र रहे न समाज। पहले मित्रों में कम पढ़ी-लिखी पत्नी भी अपेक्षाकृत आदर से देखी जाती थी और इनमें अच्छी पढ़ी लिखी का भी कोई महत्त्व नहीं। अशोक की पत्नी बी० ए० है, राजेन्द्र की एम० ए०, सत्य की एम० बी० बी० एस अब बताइये रक्षा इनमें किस तरह फ़िट बैठेगी।

(हैट को सिर पर रख कर शीशा देखता है।)

भाई साहिब—(गम्भीरता से, फिर दिलचस्पी लेते हुए) तुम उसे और पढ़ा सकते हो !

रघु—(शीशे को ज़ोर से मेज पर पटजते हुए ऊँचे स्वर से) मेरे पास न अब वह समय है न वह उत्साह !

[रामप्रसाद प्रवेश करता है।

रघु—(तनिक ऊँचे) मैंने पहले कह दिया है कि मेरे पास न अब वह समय है न वह उत्साह।

भाभी—(हँसते हुए)भाई हमारे देवर को तो ऐसी लड़की चाहिये जो अशोक की पत्नी की तरह साड़ी पहन सके; श्रीमती राजेन्द्र की तरह डेढ़ दर्जन तरीकों से बाल बना सके और उन लेडी-डाक्टर की भाँति घर की सफाई......

रामप्रसाद—इन नयी पढ़ी लिखी लड़कियों को और आता ही क्या है ?—कपड़े पहनना और घर की सफाई रखना और वह भी तब, जब धोबी और नौकर साथ दें।

(कहकहा लगाता है।)

[और कोई इस कहकहे में योग नहीं देता भाभी के ओंठों पर स्वर्ण-स्मिति की रेखा तनिक और फैल जाती है।]

रघु—(चिढ़ कर) अच्छा आपकी जो इच्छा हो करें, मुझे तो देर हो रही है।

(एक बार शीशे में देखकर तेज़ तेज़ चलता है।)

भाभी—अरे खाना तो खाते जाओ !

रघु—(आँगन के दरवाजे से) मेरी आज अशोक के घर दावत है।

(चला जाता है।)

भाभी—(भाई साहिब से) मैं कहती हूँ—हँसी के साथ हँसी रही ! आप रक्षा के लिए क्यों इतना जोर दे रहे हैं !

भाई साहिब—(चुप)

भाभी—जब उसे पसन्द ही नहीं तो कै दिन निभ सकेगी र वही प्रतिदिन की किल-किल होगी ।

भाई साहिब—(चुप)

रामप्रसाद—अब अनपढ़ लड़की से इनका गुज़ारा हो चुका ।

भाभी—प्रो० राजलाल की पत्नी आई थीं। उन्हें खु पसन्द और लड़के के मामले में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं। उनकी ड़की बी० ए० में पढ़ती है। गाना बजाना भी खूब जानती है और तो सुनती हूँ कि नृत्य-कला में भी निपुण है और सुन्दर—ा बेचारी उसके सामने क्या ठहरेगी ?

भाई साहिब—(दृष्टि अचानक घड़ीपर जा पड़ती है–चौंककर) ाह, ग्यारह बजने को हैं। (अर्थ-हीन हँसी) और मुझे अभी नहाना है।

भाभी—(उसी स्वर में) और प्रो० राजलाल प्रतिष्ठित व्यक्ति । उनके मित्रों में बड़े-बड़े आदमी शामिल हैं। यहाँ रिश्ता करने आपको भी कितना लाभ हो सकता है ? इन बस्ती वालों के यहाँ या रखा है ? आए-गए को पानी तक का तो पूछ नहीं सकते !

भाई साहिब—(हवा को हाथ से चीरते हुए) हटाओ जी, मैं हाऊँगा, शाम को देखा जायगा। चलो, तौलिया आदि स्नानगृह में रखो!

[आँगन की ओर जाते हैं, पीछे-पीछे भाभी जाती हैं।]

रामप्रसाद—मैं कहता हूँ मेरी कहीं दावत नहीं, मुझे खाना हीं पहुँच जाए।

[मेज़ पर पाँव टिकाकर पीछे को लेट जाता है]

पर्दा

दूसरा अङ्क

[इससे पहले कि रघु मि० अशोक के दरवाजे पर दस्तक दे, ड्राइँग-रूम में मि० अशोक और उनकी श्रीमती में उसी के आगमन की बहस चल रही है। इसी वाद-विवाद में ऐसा क्षण आ जाता है कि मि० अशोक चुप सामने शून्य में देखने लग जाते हैं और श्रीमती अशोक कौच पर पीछे को लेट जाती हैं। तभी पर्दा धीरे-धीरे उठता है और श्रीमती अशोक सामने अँगीठे के नीचे रखे हुए लम्बे कौच के कोने में बैठी दिखाई देती हैं।

गहरे पीले रंग की किनारीदार साड़ी पहने हैं। और इसमें उनका पीला सा-सुन्दर मुख और भी सुन्दर लग रहा है। साड़ी का छोर सिर से खिसक कर गर्दन के गिर्द लिपट गया है, अथवा स्वयं ही लिपटा लिया गया है, क्योंकि बालों में कृत्रिम घुँघर डाले गये हैं और उन घुँघरों में—शायद स्थाई बनाने के लिये—सुइयाँ अभी लगी हुई हैं।

सामने के छोटे से मेज पर, पाँव पर पाँव रखे पीछे को लेटी हुई एक सिल्क के रुमाल पर फूल निकाल रही हैं।

लम्बे कौच के दोनों ओर जरा हटकर दो छोटे कौच पड़े हैं।

फ़र्श पर दरी बिछी है और दरी के मध्य ग़ालीचे और उन पर एक समाचार-पत्र के पृष्ठ बिखरे पड़े हैं।

बाईं दीवार के मध्य एक छोटा सा मेज है, जिस पर ग्रामोफोन की मशीन और रिकार्डों का डिब्बा रखा हुआ है। उससे परे कोने में फ़र्श पर एक चिलमची रखी है और पास एक पानी का जग रखा हुआ है। ग्रामोफ़ोन पर हाथ रखे केवल एक कमीज और पतलून पहने मे० अशोक शून्य में जैसे अँगीठी पर पीतल के दो हाथियों के मध्य रखे हुए धीरे धीरे घूमने वाले ग्लोब * को देख रहे हैं।

बत्तीस पैंतीस वर्ष के युवक हैं। व्यवसाय के विचार से भाषण-दाता तो, प्रकाशक तो, लेखक तो, जो भी चाहे समझ लीजिए। समाज की पुनर्व्यवस्था आपका प्रिय विषय है और इसी पर आपने कई लेख और पुस्तकें लिखी हैं और काफी प्रभावशाली भाषण दिए हैं। अपनी इसी योग्यता के बल पर स्वयं विश्वविद्यालय की कोई डिग्री न रखने पर भी श्रीमती अशोक ऐसी ग्रेजुएट लड़की को विवाह के बन्धन में बाँध लाए हैं।]

उन की आकृति परेशान है और बाल बिखरे हुए हैं।

ग्लोब से उनकी दृष्टि अँगीठी पर रखे अपने फोटो पर जाती है; वहाँ से श्रीमती जी के एक फोटो पर और वहाँ से अपने इकट्ठे फोटो पर और एक लम्बी साँस लेकर सिर नीचे और हाथ

* ग्लोब=भूमंडल का गोलाकार चित्र।

पीछे किए घूमने लगते हैं। दायीं ओर की दीवार में दो अलमारियाँ हैं जिनके पट खुले हैं और उनमें चुनी हुई पुस्तकें साफ दिखाई दे रही हैं। वहाँ तक पहुँच कर अन्यमनस्क भाव से एक पुस्तक खींच लेते हैं। मुड़ कर एक दो पन्ने देखते हैं और श्रीमती जी के पाँवों के पास मेज पर पटक देते हैं। फिर अचानक—]

मि० अशोक—देखो सीता जी, यह तुम्हारी ज्यादती है।

[सीता जो कोई उत्तर नहीं देतीं, फूल निकाले जाती हैं। मि० अशोक कुछ पग चलते हैं फिर रुक कर]

—नौकर में तो उठने की हिम्मत नहीं (शिकायत के स्वर में) तुम जरा थोड़ा सा कष्ट कर लेतीं तो...........

श्रीमती अशोक—(पूर्ववत् सुई चलाती हुई) मैंने कह दिया मुझ में स्वयं हिम्मत नहीं ?

मि० अशोक—(मनुहार के स्वर में) देखो सीता खीर तो मैंने बना ही डाली है, सब्जी मैं ले आया हूँ। तुम जरा उसे बना देतीं और चार रोटियाँ (चुटकी बजाता है)............

श्रीमती अशोक—मैंने कभी बनाई भी हों ?

[अँगीठी के ऊपर दीवार पर टँगे हुए क्लाक में टन से आधा घण्टा बीतने की आवाज आती है]

मि० अशोक—(घबरा कर) देखो साढ़े ग्यारह बज गए रघुनन्दन आ ही रहा होगा,(विनीत स्वर में) उठो मेरी रानी......

श्रीमती अशोक—(बिना उनकी ओर देखे) मेरे सिर में दर्द है

सारी रात जागती रही हूँ।

मि० अशोक—(तनिक कटु स्वर में) देखो सीता मैं तुम्हें व्यर्थ कभी कष्ट नहीं देता। इतने दिनों से तँदूर ही से रोटी आ रही है, पर कल रघु को मैंने निमन्त्रण दे दिया...........

श्रीमती अशोक—जैसे मुझे पूछ कर......

मि० अशोक—(ज़रा मुस्करा कर) ओ हो, तुम तो समझती ही नहीं, मैंने यह जो नयी पुस्तक लिखी है, उस पर मैं रघु से समालोचना कराना चाहता हूँ। अंग्रेजी में समालोचना का........ (हँसते हैं)..... तुम तो जानती हो इन दास-वृत्ति रखने वाले भारतीयों पर क्या प्रभाव पड़ता है। (फिर हँसते हैं)...नहीं तो इस दशा में निमन्त्रण......

[जैसे उत्तर में 'अच्छा चलो' सुनने के लिये रुक जाते हैं। पर श्रीमती जी यह कहना उचित नहीं समझतीं। हाँ तेवर चढ़ा लेती हैं कि कौन उत्तर देने का कष्ट करे]

मि० अशोक—तो अब उठो रानी!

श्रीमती अशोक (जिनका संतोष अब अपनी सीमा को पहुँच चुका है। उठकर और पाँव मेज से उठाकर) मैं कहती हूँ, आपने मुझे पागल समझ रखा है? एक बार कह दिया मुझ में हिम्मत नहीं! (तनिक और ऊँचे) मुझ में हिम्मत नहीं!! फिर वही (मि० अशोक की आवाज़ की नकल उतारते हुए) रानी!......रानी! रात एक घड़ी तो ऊषा ने सोने नहीं दिया। दो बार उसे दूध पिलाने उठी। आप

तो जाने कैसे घोड़े बेच कर सोए, बीस आवाजें दी, हिले तक नहीं और तुलसी भी कम्बख्त मौत से होड़ लगा कर ...

मि० अशोक—(समझौते के स्वर में) पर सीता दूध तो हम ही रोज पिलाते हैं, आज तुम्हें पिलाना पड़ गया तो कौन सी आफत आ गई......

श्रीमती अशोक **(और भी तन कर)** मैंने कितनी बार आप से नहीं कहा कि एक नौकर ऊषा के लिये और रख दो और रसोइये भी तो दो होने चाहिएँ। एक बीमार ही हो जाता है, चला ही जाता है......

मि० अशोक—**(चिढ़ कर)** मर ही जाता है, क्यों न ? (तनिक ऊँचे) दो तो थे, एक चला गया तो मैं क्या करूँ ? घर में नौकरों की मंडी तो है नहीं कि एक चला गया तो झट दूसरे दिन दूसरा ले आए।

श्रीमती अशोक—**(और भी ऊँचे)** दूसरे दिन ? पन्द्रह दिन होगए......

मि० अशोक—**(चीख कर)** तुम तो ऐसे कहती हो जैसे मैं जान बूझ कर नहीं लाता।

श्रीमती अशोक—**(और भी तन कर)** मैं क्या जानूँ मैं स्वयं तो चूल्हा झोंक नहीं सकती।

[फिर पहले की तरह लेट जाती हैं।
पाँव मेज पर रख लेती हैं]

मि० अशोक —**(और भी चीख कर)** जैसे रोज ही तुम चूल्हा

झोंकती हो। यदि मुझे मालूम होता, मुझे स्वयं ही रसोइया भी बनना पड़ेगा तो किसी कम पढ़ी लिखी से... ..

श्रीमती अशोक—तो अब कर लीजिए, यह अरमान भी क्यों रह जाए!

मि० अशोक—(और भी चीख कर) सीता.. ...

[बायीं ओर, बरामदे में खुलने वाले दरवाजे पर, टिक-टिक की आवाज़ आती है।]

मि० अशोक—(धीरे से) शायद रघुनन्दन है।

रघु०—(बाहर से) मैं हूँ रघु!

मि० अशोक—(स्वर में हर्ष और कोमलता लाकर) आओ, आओ!

[मुड़ कर दरवाजे की ओर बढ़ते हैं। श्रीमती अशोक पाँव नीचे कर के, उठ कर बैठ जाती हैं। रघु प्रवेश करता है।]

रघु—क्या बात है इतने ऊँचे चीख रहे हो (श्रीमती अशोक से) नमस्ते जी ...

[श्रीमती अशोक आँखों में कुछ कहती हैं जो शायद "नमस्ते" ही है।]

मि० अशोक—(बेजारी के स्वर में) चीख रहा हूँ, क्या करूँ बीस बार कहा है कि भाई, तुम आराम करो! समय पर एक घड़ी का आराम बाद को एक वर्ष की मुसीबत से बचाता है, पर यह मानती ही नहीं (थके हुए स्वर में) स्वास्थ्य इनका खराब है, रात ये सोई

नहीं, पर ज्योंही सुबह मैंने बताया, कि तुम्हारा खाना है, तो झट रसोई में जा बैठीं। मैं सब्जी लेने गया था—मेरे आते आते इन्होंने खीर बना डाली (हँसते हैं) खीर बनाने में तो सीताजी बस निपुण हैं। मुझे लग गई देर, वापस आया तो बड़ी मुश्किल से रसोई से उठाया कि भाई आराम करो, फिर मुझे ही डाक्टरों के पीछे मारे-मारे फिरना पड़ेगा।

रघु—नहीं, नहीं, इस मामले में हठ न करनी चाहिये।

मि० अशोक—और फिर मैंने कहा कि रघु कोई पराया आदमी तो है नहीं, किसी न किसी तरह प्रबन्ध हो ही जाएगा।

रघु—नहीं नहीं, कोई ऐसा कष्ट करने की आवश्यकता नहीं।

मि० अशोक—अरे कष्ट क्या, देखो मिन्टों में (चुटकी बजाते हैं) सब कुछ हो जायगा (पत्नी से) लो अब उठो, हम सब ठीक कर लेंगे। तुम तनिक भी चिन्ता न करो, बस जरा ऐस्पिरीन* ले कर सो रहो।

रघु—मेरा विचार है, ऐस्पिरीन के साथ यदि एक गोली 'कोनीन'† ले लें तो और भी अच्छा है।

मि० अशोक—हाँ हाँ, उठो !

[श्रीमती अशोक जैसे बड़ी कठिनाई से उठती हैं।]

श्रीमती अशोक—(रघु से) मि० रघु माफ़.........

* ऐस्पिरीन=सिर दर्द की अँग्रेजी दवा।

† कोनीन=ज्वर की अंग्रेजी दवा

रघु—ओह, ओह, सब ठीक है, आप आराम कीजिए !

[तब मि० अशोक सहारा दे कर उन्हें दरवाजे की ओर ले जाते हैं, जो सामने की दीवार में अँगीठी के दायीं ओर है और शयन-गृह को जाता है ।]

मि० अशोक—(पर्दे को उठाकर पलंग की ओर इशारा करते हुए) लो अब तुम वहाँ जाकर सो रहो । मैं अभी ऐस्पिरीन भेजता हूँ ।

(पर्दा छोड़ कर वापस आते हैं ।)

—(नौकर को आवाज देते हैं ।) तुलसी, तुलसी ! (स्वयं ही) तुलसी तो बीमार है (खोखली हँसी) अच्छा मैं स्वयं ही ले आऊँगा ।

(और समीप आ जाते हैं ।)

—(रघु से) बैठो खड़े क्यों हो ।

[रघु बैठ जाता है मि० अशोक की दृष्टि अचानक फ़र्श पर पड़े अखबार पर जाती है ।]

मि० अशोक—(समाचार-पत्र उठा कर) आखिर कांग्रेस की कार्य्यकारिणी के १२ सदस्यों ने त्याग-पत्र दे दिया, पर आश्चर्य तो यह है कि जवाहरलाल ने भी........

(छोटे कौच में धँस जाते हैं ।)

—(समाचार-पत्र को मरोड़कर गोदी में रखते हुए) अच्छा तुम यह बताओ कि तुम्हें अच्छा क्या लगता है । दुर्भाग्य से नौकर हमारा बीमार है, और तुम देख ही रहे हो सीता जी की तबीयत ठीक नहीं, देखो होटल से सब प्रबन्ध किया जा सकता है, सब कुछ

आ जाएगा, मिन्टों में (चुटकी बजाते हैं ।)

रघु—देखो भाई कष्ट न करो, मुझे कुछ वैसी भूख भी नहीं, फिर किसी दिन सही ।

मि० अशोक—इसमें कष्ट क्या (हँसते हैं ।) पर सुनो घर और होटल की रोटी तो हम रोज ही खाते हैं, पर कभी न कभी कुछ विभिन्नता भी होनी चाहिए । तँदूर ही की क्यों न रहे आज! (जैसे तँदूर के जिक्र ही से किसी दूसरी दुनियामें पहुँच गये हैं ।) माश की छमकी हुई दाल हो, तखत महल का घी और तँदू के परोंठे । मैं कहता हूँ मजा आ जाता है—मुझे तो देर हुई इ चीजों को तरस गया हूँ......

(बाहर टिक-टिक की आवज आती है ।)

मि० अशोक—(वहीं बैठे बैठे) कौन है ?

बाहर से—मैं हूँ जी तँदूर वाला ।

मि० अशोक—क्या बात है ?

तँदूर वाला—हजूर इतने दिनों से खाना आ रहा है, हिसाब...........

मि० अशोक—(जल्दी से उठकर दरवाजे की ओर जाते हुए) क्या बक रहे हो ?

[बाहर चले जाते हैं । दरवाजा खट से बन्द हो जाता है । रघु समाचार पत्र उठा कर देखता है, जो फिर गालीचे पर गिर पड़ा है । कुछ देर बाद फिर मि० अशोक प्रवेश करते हैं ।]

मि० अशोक—तँदूर वाला आया था, तो फिर क्या ख्याल है ? पराँठे ही रहें, घी हमारे यहाँ तखत महल से आया है—अबोहर से एक सौ एक मील के फासले से, पराँठों का मजा आ जाएगा। (अचानक मुड़ कर अन्दर कमरे की ओर जाते हुए) बस एक मिनट, जरा कोट डाल आऊँ।

[रघु फिर समाचार पत्र खोलता है। कुछ क्षण बाद कोट पहने हुए मि० अशोक वापस आते हैं।]

मि० अशोक—(दरवाजे ही से) क्यों भई, यूथिका रे का रिकार्ड सुना तुमने (गुनगुनाते हैं।)

"दरस बिन दूखन लागे नैन"

[बढ़ कर ग्रामोफोन को खोल कर गुनगुनाते चाबी देते हैं।]

—बिल्कुल नया आया है, साढ़े तीन रुपये ले लिये कम्बख्तों ने, सुनोगे तो सिर धुनोगे।

[डिब्बे से रिकार्ड निकाल कर सुई बदल कर लगा देते हैं।]

—देखो तँदूर बस नीचे ही है, पाँच मिनट में आ जाऊँगा, इतने में तुम सुनो !

(रिकार्ड की ट्यून बजने लगती है।)

—अच्छा लगा, तो दूसरी तरफ लगा देना। मीरा बाई का गीत, हो और यूथिका रे की आवाज़ ! मैं तो किसी दिन कलकत्ता चला जाऊँगा

(हँसते हुए चले जाते हैं।)

[रिकार्ड बजना शुरू होता है। इसके साथ
दी शयन-गृह में, शायद उठ कर, ऊषा—
मि० अशोक की डेढ़ वर्ष की बच्ची—रोने लग
जाती है। इधर अन्तरा आरम्भ होता है, उधर ऊषा
अपने स्वर को पंचम पर ले जाकर रोना शुरू
कर देती है। इसके साथ ही श्रीमती अशोक का
थका, चिढ़ा स्वर सुनाई देता है:—]

—सोजा रानी सोजा !

[बेजारी से सिर हिला कर रघु दरवाजे के
पास जाता है।]

रघु—(बाहर पर्दे के पास खड़े होकर) इसे मुझे दे दीजिए

श्रीमती अशोक—(अन्दर से बारीक और तीखी आवाज में
नहीं जी, यह अपने पिता जी के अतिरिक्त और किसी के पास न
जाती, मैं तो जैसे इसे काटती हूँ।

[रघु मुड़ना चाहता है, ऊषा और भी जोर से
रोती है।]

रघु—(फिर मुड़ कर) मैं कहता हूँ आप दे दीजिए इसे,
चुप करा दूँगा।

[शयन-गृह में अपने बिस्तर से उठ कर
श्रीमती अशोक बच्ची को उठाती हैं और अन्दर
दी से हाथ बढ़ा कर उसे रघु को दे देती है।]

श्रीमती अशोक—आप भी लेकर देख लीजिए।

[फिर वापस चली जाती हैं। रघु के पास आकर बच्ची और भी जोर से रोने लगती है। वह कंधे से लगता है, वह उतरी पड़ती है। इसी परेशानी में सीटी, जिसे बजा कर वह सुनाना चाहता है, उसे भूल जाती है और मुँह गोलाकार ही बना रह जाता है फिरः—]

रघु—(खीज के स्वर में) आ, आ तुम्हें गाना सुनाएँ!

[उसे ग्रामोफोन के पास ले आता है, पर इस बीच में रिकार्ड बज चुका होता है। एक हाथ से बच्ची को थाम, सुई को उठा कर फिर पहले से लगा देता है। रिकार्ड फिर बजना आरम्भ हो जाता है, पर चाबी चूँकि समाप्त हो गई है, इस लिये बहुत धीरे-धीरे बजता है।]

रघु—(अपने आप) ओह! चाबी तो खत्म हो गई।

[बच्ची को कौच पर लिटा कर चाबी देने लगता है। बच्ची और भी रोती है, कौच पर उछल-पुछल पड़ती है। तभी मि० अशोक प्रवेश करते हैं।]

मि० अशोक—ओह, यह जाग पड़ी। आ तो मेरी रानी बेटी

[उसे उठा कर गोद से लगा लेते हैं। बच्ची चुप हो जाती है।]

मि० अशोक—(बच्ची को कंधे से लगा कर थपथपाते हुए) बस अभी पाँच मिनट में सब कुछ आ जाएगा। दही के लिए पैसे और पराँठों के लिये घी दे आया हूँ।

(रिकार्ड धीरे-धीरे बज रहा है।)

मि० अशोक—क्या लोच है इसके स्वर में (सहसा चौंक कर) पर चाबी शायद तुमने नहीं दी।

रघु—मैं देने ही लगा था कि आप आ गए!

मि० अशोक—दूसरा लगा दो!

रघु (बेजारी से) हटाओ जी!

[सुई हटा देता है, रिकार्ड बन्द हो जाता है। अशोक ऊषा को कंधे से लगाए गुनगुनाते हुए घूमते हैं।]

सोजा मेरी रानी सोजा
ऊषा बड़ी सयानी सोजा

(फिर रघु के समीप आ कर) तुमने मेरी पुस्तक देखी!

रघु—'स्वर्ग की झलक', हाँ देखी!

मि० अशोक—पढ़ी, पसन्द आई?

रघु—आपकी शैली में प्रवाह है।

मि० अशोक—उसमें दी गई युक्तियों का, हो सकता है, तुम समर्थन न करो, पर भाई अपना-अपना विचार है और अपना-अपना अनुभव!

(घूमते हैं।)

(फिर रघु के पास रुक कर) मैं कहता हूँ कि पत्नी क्यों अपने अस्तित्व को अपने पति के अस्तित्व में लीन कर दे? अपनी हस्ती वह अलग क्यों न रखे? हमारे वैवाहिक जीवन में जो दोष पैदा हो गए हैं, वे इसी घातक विचार का तो परिणाम हैं कि पति पत्नी का परमेश्वर है। (बेजारी से एक 'हुँ' कर देते हैं।) मेरा और (तनिक हँस कर) श्रीमती अशोक का यह ख्याल है कि पति पत्नी दो पृथक्-पृथक् हस्तियाँ हैं। दोनों अपने-अपने कृत्यों के लिये आजाद, न पत्नी पर पति के कामों का जिम्मा है, न पति पर पत्नी के कृत्यों का दायित्व! और हमारा वैवाहिक जीवन नीलम, निर्मल जल-स्रोत की भाँति अविराम गति से बहे जा रहा है, किसी प्रकार का मैल नहीं, किसी प्रकार की रुकावट नहीं।

[ऊषा कुनमुनाती है। अशोक फिर उसे लोरी देते हुए घूमते हैं:—

सोजा मेरी रानी सोजा
ऊषा बड़ी सयानी सोजा

[दरवाजे पर टिक-टिक की आवाज सुनाई देती है।]

अशोक—कौन?

(बाहर से) बाबू जी खाना ले आया हूँ।

मि० अशोक—क्यों भई उधर चलें—खाने के कमरे में, या यहीं रहे, (फिर स्वयं ही) ले आओ भाई इधर ही ले आओ!

[रघु छोटे मेज पर से कपड़ा उठा देता है।

ग्रामोफोन वाली मेज के साथ जो कुर्सी पड़ी है, उसे खिसका लेता है। नौकर थाली में खाना रखे, ऊपर एक थाली उल्टी रखे, दाखल होता है। ऊपर की थाली हटा कर दूसरी थाली मेज पर रख दी जाती है।]

मि० अशोक—लो भई ऊषा तो सो गई, मैं इसे जरा अन्दर दे आऊँ।

[अन्दर जाते हैं, रघु जग से पानी ले कर चिलमची से हाथ धोता है। कुछ क्षण बाद अशोक वापस आ जाते हैं, उसी तरह बच्ची को कंधे से लगाए हुए]

—(*खसियानी हँसी के साथ*) सीता को इससे बड़ा डर लगता है, कहने लगी—मेरा तो सिर फटा जा रहा है, यह कम्बख्त फिर चीखेगी (फिर खसियानी हँसी !)

रघु—(रूमाल से हाथ पोंछता हुआ) लाइये, मैं हाथ धो चुका हूँ, इसे मुझे दे दीजिए !

मि० अशोक—नहीं इसे नींद आ रही है, मैं इसे यहीं कौच पर लिटा देता हूँ।

[ऊषा को कौच पर लिटा कर पुचकारते हैं, लोरी देते हैं और थपक कर सुला देते हैं।

रघु जा कर खाने की मेज पर बैठ जाता है और मेज को जरा अपनी ओर खिसका लेता है।]

मि० अशोक—(जग से हाथ धोते हुए) ऊषा तो सो गई, मैं

जाकर जरा खीर ले आऊँ। इतने में तुम शुरु करो।

रघु—नहीं नहीं आप आ जाइये!

[और साथ ही एक चम्मच सब्जी का मुँह में डाल लेता है।

अशोक जाते हैं और कुछ क्षण बाद दोनों हाथों में खीर की दो तशतरियाँ लिए वापस आते हैं।]

मि० अशोक—खीर दो तशतरियाँ में ले आया हूँ। जरूरत ड़ने पर और ले आऊँगा (हँसते हैं) स्वयं ही परसने और खाने क्या मजा है और यदि स्वयं ही बनाया भी जाय तो फिर बात क्या है?

(तशतरियाँ रखते हैं।)

—नौकर कम्बख्त बीमार हो गया और सीता जी की भी ीयत............।

रघु—मैं पूछता हूँ आप यह सब विवरण क्या दे रहे हैं। ठिए, सब अच्छा है, मुझे जरा और कई जगह जाना है। राजेन्द्र के ाँ गए हुए देर हो गई, आज मैं उससे मिल लेना चाहता हूँ।

[एक पराँठा उठा उससे ग्रास तोड़ता है।]

मि० अशोक—(स्वयं भी ग्रास तोड़ते हुए) ये तँदूर के पराँठे ी क्या चीज हैं, जिसने इनका आविष्कार किया- उसकी प्रशंसा रने को जी चाहता है!

(कुछ क्षण दोनों चुपचाप ग्रास चबाते हैं।)

रघु—(जिसने विष की भाँति सख्त ग्रास निगला है ।) बेहद स्वादिष्ट है, पर मैंने कहा न कि मुझे भूख ही नहीं ।

[हँसता है और दूसारा ग्रास तोड़ कर माश की दाल में भिगोता है ।]

मि० अशोक—और यह माश की दाल भी, मैं कहता हूँ, एक ही ताकत की चीज़ है ।

रघु—(व्यङ्ग से) हिन्दुस्तान का यह सौभाग्य है कि यह इसी देश में होती है । दूसरे देश ताकत के लिये दूध, मलाई, पनीर, टमाटो, सलाद और बीसियों दूसरी चीजें प्रयोग में लाते हैं, पर भारतवासी मजे से दाल खाते हैं और मोटे होते जा रहे हैं ।

[दोनों फिर कुछ क्षण चुपचाप खाना खाते हैं ।]

मि० अशोक—मेरी पुस्तक की समालोचना तो आप लोग इस संडे-ऐडीशन (साप्ताहिक संस्करण) में कर देंगे ।

रघु—इसमें तो नहीं, अगले में जरूर चली जाएगी ।

मि० अशोक—जरा जल्दी कर दें तो अच्छा है । मैं सम्मतियाँ छपा कर बाँटना चाहता हूँ ।

रघु—मैं कहता हूँ आप चिन्ता न करें ।

(रोटी को परे खिसका देता है ।)

मि० अशोक—क्यों, और खाओ न, कुछ अच्छा नहीं लगा ?

रघु—नहीं नहीं परांठे तो खूब स्वादिष्ट हैं और (जरा हँस कर) माश की दाल भी ! पर भूख, मैंने आपसे कहा न, कि मुझे बिल्कुल नहीं ।

मि० अशोक—(रोटी परे करके) तो मैंने बस की !

रघु—नहीं नहीं......देखिए मैं खीर खाने लगा हूँ।

(चम्मच उठाता है।)

अशोक—(स्वयं भी चम्मच उठाते हुए) मुझे तो स्वयं भूख न थी, मैं तो तुम्हारा साथ बटाने के लिये बैठ गया। खैर, खीर देखो, अच्छी लगे तो और ले लेना। खीर बनाने में सीता जी बस निपुण.........

रघु—पर मेरा ख्याल है कि मीठा शायद उन्होंने नहीं डाला, या यह फीकी डिश.........

मि० अशोक—(चौंक कर) हैं मीठा नहीं !

(नौकर को आवाज देते हैं।)

—तुलसी ! ओ तुलसी !! (फिर स्वयं ही खिसयानी हँसी के साथ) ओह ! तुलसी तो बीमार है। मेरा ख्याल है शायद गलती से मैं...... (घबरा कर) मेरा...मेरा...मतलब है कि सीता जी मीठा डालना भूल गईं। ठहरो मैं मीठा लाता हूँ।

रघु—नही नहीं सब ठीक है आप बैठें।

[जल्दी-जल्दी खीर के चम्मच निगल कर
फिर उठ बैठता है।]

मि० अशोक—क्यों उठ खड़े हुए ?

रघु—मैं भाई, पहले ही जरूरत से ज्यादह खा चुका। समाचार-पत्र में नाइट एडीटर * हूँ, और मेदा मेरा कमजोर है।

---

* नाइट एडीटर—रात के समय काम करने वाला सम्पादक।

(हँसता है।)

अशोक—अरे भाई कुछ तो लो, यह दही तुम ने छुआ भी नहीं।

रघु—दोपहर तक दही मीठा कैसे रह सकता है (हँसता है।) और डाक्टर ने मुझे खट्टा दही खाने से मना कर रखा है।

[जाकर जग से हाथ धोता है, अशोक जल्दी-जल्दी खाना खाते हैं।]

रघु—(हाथ धोकर रुमाल से पोंछते हुए) अब मुझे छुट्टी दीजिए। इस दावत के लिये धन्यवाद !

(कौच से हैट उठाता है।)

मि० अशोक—(उठते हुए, मुँह का ग्रास चवाते-चवाते) ठहरो मुझे भी हाथ धो लेने दो।

[जाकर हाथ धोते हैं, और कुल्ला करते हैं, फिर रुमाल से हाथ पोंछते हैं।]

रघु—(हाथ बढ़ाते हुए) अब मुझे छुट्टी दीजिए। राजेन्द्र के यहाँ मुझे जाना है।

मि० अशोक—(उसका हाथ अपने हाथ में लेकर दरवाजे की ओर चलते हुए) चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ, ऊषा तो सो रही है, मैं माता जी के लिये कोनीन और एस्पिरीन लेता आऊँगा।

(दोनों चलते हैं।)

पर्दा

तीसरा अङ्क

यद्यपि मि० अशोक से उसने यही कहा कि वह राजेन्द्र के घर जा रहा है, पर उनसे अलग होकर रघु इस सोच में पड़ गया कि वह सचमुच वहाँ जाए या न जाए। घर में सुबह-सुबह झगड़े की सूरत में जो अपशकुन हो गया था, उसका परिणाम तो उसने अशोक के घर प्रत्यक्ष ही देख लिया था। भूखी आँतें इसे आगे बढ़ने से भरसक रोक रही थीं, पर मन कहता था कि अब जाने फिर कितने दिन में भेंट हो, क्यों न मिलते ही चलो, न होगा खाना वहीं खा लेना। और उस की ही बात मान, वह राजेन्द्र के घर की ओर चल पड़ा था। चल तो पड़ा, पर सन्देह अभी छिपा कहीं कह रहा था, कि वह घर न मिलेगा और तब उसके सामने वह सारा लम्बा मार्ग घूम-घूम जाता जो उसे राजेन्द्र के घर से अपने घर तक ले जाता था।

इसी असमंजस में वह चलता गया, मुड़ नहीं सका और वह पहुँच गया। अब जब पहुँच गया तो बिना देखे कैसे बने? सो वह सीढ़ियां चढ़ने लगा।

इधर अपने बीमार बच्चे की चारपाई के पास राजेन्द्र बैठा है। ड्राइंग-रूम उसका अव्यवस्थित दशा में है, और दवाइयों के आधिक्य से छोटा-मोटा अस्पताल बना हुआ है। अँगीठी पर शीशियां, मेज़ पर शीशियां और अलमारियों पर शीशियां; मेज

कुर्सियां, मेज़ की किताबें और कुर्सियों की गद्दियां सब अस्त-व्यस्त पड़ी हैं।

तभी रघु कमरे में प्रवेश करता है और पर्दा उठता है।]

रघु—सुनाओ भई क्या हाल हैं आजकल ?

राजेन्द्र—किसी तरह बसर हो रही है !

रघु—(व्यङ्ग-पूर्ण हँसी से) मि० अशोक के घर हमारी दावत थी। वहां खूब जी भर कर (हँसता है) खूब जी भर खा खाने के बाद हमने सोचा तुम्हें भी मिलते चलें।

[जोर से हँसता है, बिस्तर पर पड़ा बीमार बच्चा रो उठता है।]

राजेन्द्र—आ, आ, मेरे पास आ !

(उसे उठ कर कंधे से लगा लेता है।)

—(उठते हुए, रघु से) अपना-अपना भाग्य है भाई, तु दावतें खाने को मिलती हैं और यहाँ दो दिन से प्रायः उपवास है।

रघु—(आश्चर्यान्वित होकर) उपवास ?

राजेन्द्र—बच्चा दो दिन से बीमार है !

रघु—दवा क्यों नहीं दी ?

राजेन्द्र—दवा हो रही है, दो बार डाक्टर को दिखा चुका और औषधियाँ........

(हँसता है और अँगीठी और मेज की ओर संकेत करता है।

रघु—भाभी जी कहां हैं ?

राजेन्द्र—(व्यङ्ग से मुस्करा कर) मिसेज़ राजेन्द्र, वे तो रीहर्सल* पर गई-हुई हैं।

रघु—रीहर्सल !

राजेन्द्र—हाँ कल, एस० आर० सभा की ओर से कंसर्ट† है न, वहाँ उनका भी नृत्य है।

(हँसता है—खोखली खसियानी हँसी !)

रघु—पर बच्चा........

(राजेन्द्र जोर से हँस देता है।)

[स्थानीय कालेज में राजेन्द्र दर्शन का अध्यापक है, और उसकी आकृति को देख कर ही मालूम हो जाता है कि इस आकृति का स्वामी या दार्शनिक है या कलाकार।

पतला दुबला शरीर, सुन्दर मुख, चौड़ा मस्तक, लम्बा नाक और गहरी गम्भीर आँखें, स्वभाव में कुछ उदासीनता, अपनी ओर से भी और --संसार की ओर से भी

ऐसा व्यक्ति जो दूसरों पर भी हँस सकता है और अपनेपर भी हँस सकता है, और जब हँसता तो उसकी हँसी, एक गहरी व्यथा और तीव्र व्यङ्ग की पुट लिये हुए होती, पर इस व्यङ्ग और वेदना को, कंधे से लगा हुआ नन्हा बीमार बच्चा बिल्कुल नहीं समझता, इस लिये प्रोफेसर साहब के इस जोर से हँस देने

---

* रीहर्सल = नाटक करने से पहले उसका अभ्यास।

† कंसर्ट = मिल-जुल कर गाना-बजाना आदि।

पर वह चिड़चिड़े स्वर में रो देता है।]

राजेन्द्र—पुच, पुच, (पुचकारता है और फिर कंधे से लगा कर झुलाता है।)

रघु—और नौकर तुम्हारा......

राजेन्द्र—वह किधर किधर हो सकता है। डाक्टर को बुल गया है।

रघु—क्यों कुछ ज्यादा खराब हालत है इसकी ?

राजेन्द्र—सारी रात नहीं सोया; चिड़-चिड़े स्वभाव का हो ग है, ज्वर अभी कम नहीं हुआ, और........

(रघु हँस पड़ता है।)

राजेन्द्र—(हैरानी से) क्यों ?

रघु—मुझे अपने घर पर हँसी आती है। मैंने सोचा था—तुम घर में ही कुछ पेट की आग बुझा लेंगे, पर देखता हूँ तुम स्वयं.....

राजेन्द्र—क्यों अशोक के घर तुम्हारी दावत जो थी !

रघु—हाँ दावत तो थी और इसी दावत की खुशी में ह सुबह का दूध भी नहीं पिया, पर अब इस भाग्य को क्या क जाए ! वहाँ श्रीमती अशोक कुछ अस्वस्थ थीं—रात दो बार उ कर बच्ची को दूध पिलाने के कारण ! और तँदूर के—मि० अशो के कथनानुसार—स्वादिष्ट परौंठों का मुझे अभ्यास नहीं !

राजेन्द्र—(व्यङ्ग से हँसता है।) ये नव-शिक्षित स्त्रियाँ ! तुम खड़े क्यों हो, उधर कुर्सी पर बैठ क्यों नहीं जाते, मैं बैठूँगा

था कि फिर रोने लगा, मेरे तो कंधे रह गए हैं। बैठ जाओ तुम!

रघु—मैं ठीक हूँ!

(उसके साथ-साथ घूमता है।)

राजेन्द्र—मैं सोचता हूँ रघु, मनुष्य को किसी तरह भी संतोष नहीं—अशिक्षित पत्नी थी तो रोते थे, शिक्षित है तो रोते हैं।

(हँसता है।)

[कुछ क्षण दोनों चुप-चाप घूमते हैं।]

राजेन्द्र—(कुछ क्षण बाद) मैं सोचता हूँ, शिक्षा का जो घातक प्रभाव हमारे यहाँ की स्त्रियों पर दिन-प्रति-दिन पड़ रहा है, यह उन्हें किधर ले जाएगा और उनके साथ हम गरीबों को भी (हँसता है—अभिप्राय पतियों से है।) चाहिए तो यह कि ज्यों-ज्यों मनुष्य अधिक शिक्षित होता जाए, वह अधिक संस्कृत, अधिक सौम्य, अधिक गम्भीर......

[सीढ़ियों पर खट-खट की आवाज सुनाई देती और बायीं ओर के दरवाजे से श्रीमती राजेन्द्र विद्युत्-सी बनी प्रवेश करती हैं—

तीखे नक्श, गोरा मुख (पाअडर+सुर्खी) कंधो तक नंगे बाज़ू, पतली कमर, कानों में सुनहरी बुन्दे, भड़कीले रंग की साड़ी। और चाल जैसे नपी-तुली, पर चंचल!

श्रीमती राजेन्द्र—क्या हाल है उम्मी का?

राजेन्द्र—(अन्यमनस्कता से) ज्वर की तीव्रता से शिथिल

सा, चेतना हीन सा......

श्रीमती राजेन्द्र—तो डाक्टर को नहीं बुलाया ? मैं पूछती हूँ आप से एक बच्चे की .....

(रघु खाँसता है।)

श्रीमती राजेन्द्र (सहसा घूम कर) ओह ! मि० रघुनन्दन हैं। (ओठों पर मादक मुस्कान आ जाती है।) नमस्कार ! सुनाइये क्या हाल चाल हैं, बहिन अब हमारे लिये लाएँगे या नहीं ?

(रघु केवल जरा हँस देता है।)

श्रीमती राजेन्द्र—आज आप एस० आर० सभा की कंसर्ट देखने आएँगे या नहीं। मेरा ख्याल है, यह कंसर्ट अत्यन्त सफल रहेगी। मिस शशि और मिस उमा भी नृत्य में भाग ले रही हैं।

रघु—उमा !

श्रीमती राजेन्द्र—प्रो० राजलाल की लड़की, आप उन्हें नहीं जानते, वह तो प्रसिद्ध कलाकार है, नृत्य कला में......

रघु—मैंने सुना है, पर देखने का अवसर नहीं मिला, रात का सम्पादक एक विचित्र संसार का व्यक्ति होता है, जिसकी सुबह, शाम के साथ आरम्भ होती है और काम करने का समय भी........

श्रीमती राजेन्द्र—पर आज तो इतवार है और प्रोग्राम अत्यन्त दिलचस्प........।

रघु—आप भी भाग ले रही हैं ?

श्रीमती राजेन्द्र—(कुछ शिकायत के से स्वर में) मुझे भी [illegible] (हँसती है)। हमारे चौधरी साहब, वही जो हमें

नृत्य की शिक्षा देते हैं, अनुरोध करने लगे। चैरेटी कंसर्ट (धर्म-अर्थ कंसर्ट) है, नहीं तो बेबी (बच्चे) की तबीयत दो दिन से ठीक नहीं (घूम कर, पति से) मैं कहती हूँ आपने डाक्टर को क्यों नहीं बुलवा भेजा, मुझे तो अभी वापस जाना है, खाना तो मैं वहीं मिसेज़ दयाल के यहाँ खा लूँगी, आप.........रसिया ने बनाया है या नहीं ?

राजेन्द्र—रसिया तो ....।

श्रीमती राजेन्द्र—मैं ज़रा कपड़े बदल आऊँ।

[खट-खट दूसरे कमरे में चली जाती है।]

राजेन्द्र—(**खसियानी हँसी के साथ**) लो भई तुम्हें तो निमन्त्रण मिल गया, तुम्हें तो आज यह कंसर्ट ज़रूर देखनी चाहिए।

रघु—(**राजेन्द्र की बात का उत्तर न देकर**) यह बच्चे का सिर तुम्हारे कंधे से लुढ़क गया है, थक गए हो, तो मुझे दे दो !

राजेन्द्र—(**हँसते और शून्य में देखते हुए**) संतोष करो, इतनी देर खिलाना पड़ेगा कि ऊब जाओगे, ज़रा भाभी को आने दो। कहो कोई फैसला किया है या नहीं ?

रघु—मैं घबराता हूँ।

राजेन्द्र—(**जैसे अपने से**) घबराने ही की बात है !

[व्यङ्ग से हँसता है—कुछ क्षण दोनों चुप रहते हैं फिर]

रघु—मैं पूछता हूँ तुम लोग बच्चे का ध्यान क्यों नहीं रखते भाभी के दूध में तो कोई दोष नहीं !

राजेन्द्र—वह इसे दूध पिलाती ही कब है ?

रघु—क्या कहा, भाभी इसे दूध नहीं पिलातीं ?

राजेन्द्र—कभी नहीं, उसने शुरू ही से नहीं पिलाया।

रघु—पर इसी लिये तो बच्चा अस्वस्थ रहता है। मां
न पीने से रोग के आक्रमण को सहने की शक्ति
जाती है।

राजेन्द्र—उसकी बला से।

रघु—क्या कहते हो ? ......भाभी ..... माँ की ममता

राजेन्द्र—(व्यङ्ग से हँसता है।) सब पुरानी बातें हैं।

(दोनों फिर कुछ क्षण चुप रहते हैं।)

राजेन्द्र—(दार्शनिक) इन चमकदार मोतियों का उपयोग
है रघु, तुम नहीं जानते—तुम इन्हें दूर ही से प्यार की नजरों
सकते हो; चाहो तो इन्हें पास बिठा सपनों के संसार बसा सक
इनकी दमक से अपनी आँखें जला सकते हो; पर जीवन के
पीस, इन्हें किसी काम में ला सकोगे, इसकी आशा नहीं।

(लम्बी साँस लेता है।)

रघु—यह तुम्हारी दुर्बलता है।

राजेन्द्र—तुम इसे दुर्बलता कहते हो, मैं इसे दूरद
समझता हूँ। पत्थर को समझाओ तो सिरदर्दी प्राप्त होगी,
टकराओ तो माथा फूटेगा। हमने एक नयी विधि नि
ली है......

रघु—नयी विधि ?

राजेन्द्र—बस, उसे पूजा की चौकी पर बिठा दो !

रघु—(हँसता है) पर तुम फेंक सकते हो।

राजेन्द्र—(व्यङ्ग से मुस्करा कर) बस यही पुरुषत्व हम लोगों में शेष रह गया है, एक बार जो बोझ उठा लिया, उसे ढोए जाते हैं।

(हँसता है।)

रघु—पर तुमने पहले कभी नहीं बताया !

राजेन्द्र—चुप रहना भी इस खेल का एक हिस्सा है।

(फिर हँसता है।)

[श्रीमती राजेन्द्र साड़ी बदल कर अन्दर से आती हैं—रंग के ऊपर जैसे और रंग चढ़ा कर !]

श्रीमती राजेन्द्र—(अपने पति से) रसिया को भेज कर मिसेज दयाल के यहाँ मुझे बेबी के सम्बन्ध में पता दे देना, मुझे चिन्ता रहेगी। चौधरी साहिब का अनुरोध है कि वाद्य यन्त्रों के साथ मैं फिर एक बार रीहर्सल कर लूँ।

(राजेन्द्र उत्तर नहीं देता)

श्रीमती राजेन्द्र—अच्छा आप तो आएँगे न मि० रघु ?

रघु—(हँस कर) मैं प्रयास करूँगा।

श्रीमती राजेन्द्र—प्रयास नहीं, अवश्य आइयेगा। मैं विश्वास दिलाती हूँ, आपको निराश नहीं होना पड़ेगा, शशि, उमा, फिर संगीत, और प्रहसन (मुड़ कर अपने पति से उल्लसित स्वर में) मैं कहती हूँ—चौधरी साहिब मेरे सम्बन्ध में बड़ी आशा रखते हैं।

करते हैं, मैं उनकी सब आशाओं से बाजी ले जाऊँगी ।

[दोनों हाथ भींच कर हँसती है—मीठी मादक हँसी, फिर]

(जैसे कुछ याद आ गया है ।) और हाँ, मेरे ज़िम्मे तो उन्होंने कुछ टिकट भी लगा दिए हैं । (जेब से टिकट निकालती है ।) तो आप के ज़िम्मे कितने लगाऊँ ? (हँसती है ।) देखिए मैं आपको दंड नहीं दूँगी, जितने आप खुशी से लेना चाहें (हँसती है ।) तो कितने काटूँ ? (फिर स्वयं ही) अच्छा, पाँच आपके ज़िम्मे रहे, दो रुपये से कम में तो आप के मित्र क्या जाना पसन्द करेंगे ?

रघु—नहीं वे इस बात को मान-अपमान का प्रश्न नहीं बनाते ।

(हँसता है ।)

श्रीमती राजेन्द्र—पर यह तो आपका अपमान है और मैं आपका अपमान नहीं कर सकती (हँसती है ।) तो काटूँ पाँच ?

राजेन्द्र—तुम पच्चीस ही रघु के नाम काट सकती हो ।

(शैतानी हँसी हँसता है ।)

रघु—अरे भाई, मैं पाँच कहाँ बेच सकता हूँ । अच्छा, मैं पाँच रुपये का एक ही टिकट ले लेता हूँ ।

श्रीमती राजेन्द्र—(उल्लास से) ओह, धन्यवाद ! (टिकट काटती है ।) और यह रुपया-रुपया वाले पाँच आपके मित्रों के लिये ।

रघु—(खसियानेपन से हँसता है ।) मैं कहता हूँ, भाभी, यह जूत मुझ पर ही पड़ेगा ।

श्रीमती राजेन्द्र—मैं विश्वास दिलाती हूँ, तुम्हें और तुम्हारे

मित्रों को इन रुपयों के जाने का दुःख न होगा। कितनी तैयारी से यह कंसर्ट हो रही है। और खर्च निकाल कर इसकी सब बचत हिसार के अकाल-पीड़ितों के लिये जायगी कुछ उन बुभुक्षित किसानों का भी ख्याल करो।

(टिकट फाड़ कर देती है।)

—ये लीजिए पाँच टिकट, और ...रुपये (हँसती है।) मुझे तो देने ही पड़ेंगे, आप जब सुगमता से... (हँसती है।)

रघु—पर अब जब आपने टिकट फाड़ दिए

अशोक—और फिर यह तो हिसार के अकाल-पीड़ितों . ....

रघु—(खसियानी हँसी से) ये लीजिए नोट ! (जेब से नोट निकाल कर देता है।) मैं उधार पसन्द नहीं करता।

श्रीमती राजेन्द्र—धन्यवाद ! सभा आपकी अत्यन्त कृतज्ञ होगी। तो अब तो आप आएँगे ही, सीट मैं अगली पंक्ति में आप के लिये रिज़र्व* (सुरक्षित) करा छोड़ूँगी। काश आज बहिन जीवित होती !

(रघु दीर्घ-निश्वास छोड़ता है।)

—(घूम कर अपने पति से) मैं सोचती हूँ, यदि आप भी आज चल सकते। चौधरी साहिब कहते थे कि पहले से मैंने बहुत उन्नति की है; डाक्टर जो बताए इसकी सूचना मुझे भिजवा देना। भूलना नहीं, मुझे चिन्ता रहेगी (रघु से) अच्छा तो कंसर्ट में......

(हँसती हुई चली जाती है।)

रघु—तुम आज न चलोगे राजेन्द्र ?

[दोनों हँसते हैं। एक व्यङ्ग-पूर्ण और दूसरा खिसियानी हँसी ! फिर कुछ क्षण दोनों मूक रहते हैं और फिर रघु एक अँगड़ाई लेकर उठने लगता है कि नौकर प्रवेश करता है।]

रसिया—बाबू जी !

राजेन्द्र—(घूम कर) डाक्टर साहिब मिले रसिया ?

रसिया—आ रहे हैं बाबू जी !

[और दूसरे क्षण अपने मोटे भारी-भरकम शरीर को लिये डाक्टर साहिब प्रवेश करते हैं। सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उनकी साँस फूल गई है; माथे पर तेवर पड़ गए हैं और चेहरे की झुर्रियाँ सिकुड़ गई हैं। हैट उतार कर रखते हैं और गहरी साँस लेते हैं—]

डाक्टर—(मुस्करा कर, जबकि झुर्रियाँ फैल जाती हैं।) दिये तले अँधेरा है। (हँसता है।) मोटा होता जा रहा हूँ, दुनिया भर को इलाज करता हूँ और अपना......(हँसता है।) सैर तक का समय नही मिलता। (दरवाजे की ओर देखता है। उन सीढ़ियों का ध्यान आ जाता है, जो अभी बड़ी कठिनाई से समाप्त हुई हैं।) पूछता हूँ आप ऊपर की मंजिल में क्यों रहते हैं ?

राजेन्द्र—(हँस कर) पर सब के पास डाक्टर साहिब, कोठियाँ तो नहीं हो सकतीं और न मोटरें !

डाक्टर—अच्छा है, नहीं तो मकान की सीढ़ियाँ भी आप

मुश्किल से चढ़ सकते।

(सब हँसते हैं।)

—बच्चे की हालत कुछ सुधरी या नहीं ?

राजेन्द्र—रत्ती भर भी नहीं, डाक्टर साहिब, बल्कि ज्वर की तीव्रता और भी बढ़ गई है, खाँसी भी है, और नजला भी।

[डाक्टर थर्मामीटर निकाल कर बच्चे की बगल में रखता है।]

—जितना आप अप्राकृतिक साधन प्रयोग में लाते जाएँगे, उतना ही बच्चे दुर्बल होते जाएँगे। आखिर क्या कारण है कि अपने सुन्दर, लम्बे-तगड़े बलिष्ठ पूर्वजों के हम बौने से अवशेष मात्र रह गए हैं—हमारे बच्चों को हवा साफ नहीं मिलती और दूध मिलता है बक्सों में बन्द! हँसना, किलकारी मारना वे नहीं जानते, रोना-चीखना वे नहीं जानते !!

(थर्मामीटर निकाल कर देखता है।)

—१०२ है, ज़रा लिटा दीजिए!

[राजेन्द्र बच्चे को चारपाई पर लिटा देता है। डाक्टर उसका निरीक्षण करता है।]

—आखिर क्या कारण है कि देहात में हमें छै-छै सात-सात फुट लम्बे, तगड़े, ऊँचे, चौड़ी चकली छातियों वाले जाट मिलते हैं। और हमारे यहाँ... ...(हँसता है।) इसे कब्ज़ तो नहीं रहती ?

राजेन्द्र—जी कब्ज़ तो इसे परसों ही से है!

डाक्टर—(गले को देखता हुआ) अब यह बच्चा जब आप

—यह न लेटेगा, तुम ज़रा उठ कर खिड़की लगा दो।

[रघु उठ कर खिड़की लगाता है, तभी खट-
खट करती श्रीमती राजेन्द्र वापस आती हैं।]

श्रीमती राजेन्द्र—मुझे अभी डाक्टर मिले थे, कहते थे ख़सरा हो गया है, सावधानी की जरूरत है, तो अब रसिया से कहना कि खाना न बनाए, बच्चे के लिये नौकर की जरूरत होगी। खाना आज होटल से मँगा लेना, मेरा ब्रोच*यहीं रह गया। उसे लेने आई हूँ, कहीं गुम ही न हो गया हो।

(खट-खट करती हुई अन्दर चली जाती हैं।)

रघु—(अँगड़ाई लेकर उठता है।) अच्छा भाई मुझे तो आज्ञा दो; बेहद भूख लग रही है। खाने का समय तो रहा नहीं पर अनारकली से दूध पी लूँगा। तुम भी, मैं कहता हूँ, दूध मँगा लेना। शाम का खाना, न हुआ मैं भिजवा दूँगा।

(श्रीमती राजेन्द्र आती हैं।)

श्रीमती राजेन्द्र—मिल गया, मैं तो डर ही गयी थी, (रघु से) आप जा रहे हैं, तो चलिये मिसेज दयाल के घर तक साथ रहेगा।

रघु—लेकिन भाभी, यह काम जो तुमने मेरे जिम्मे लगा दिया है—मुझे तो अभी पाँच आदमी फँसाने हैं।

श्रीमती राजेन्द्र—अरे तो मिसेज दयाल का घर तो मार्ग ही में है।

रघु—चलिये, (राजेन्द्र से) अच्छा भाई फिर......

---

*ब्रोच=एक तरह का पिन।

चौथा अङ्क

दृश्य पहला

[अँगीठी पर रखे हुए छोटे से टाईम-पीस की सुईयों ने अभी अभी ६ बजाए हैं। इतवार का दिन समाप्त हो गया, पर यह दिन काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहा है। साधारणतया केवल रघुनन्दन को छोड़ कर घर के सब व्यक्ति इस समय तक चारपाइयों पर लिहाफ़ लेकर पड़ चुके होते हैं। दुकानदार होने के नाते ला० गिरधारीलाल की कोई बड़ी साहित्यिक अथवा कलात्मक प्रवृत्तियां तो हैं नहीं, बस, सुबह उठना, नहा खाकर दुकान पर जा बैठना और फिर सारा दिन ग्राहकों से सिर खपाने के बाद आकर खाना खाकर सो रहना—कई वर्षों से यही क्रम उनका चला आ रहा है। कारोबारी महत्त्वाकाँक्षा अवश्य उन्हें है, दुकान को वे और भी बढ़ी-चढ़ी देखना चाहते हैं पर जल्दी रात को सो जाना उनकी इस आकाँक्षा के मार्ग में रुकावट नहीं बनता। रही उनकी पत्नी—भाभी—तो वे अवश्य सारा दिन एकान्त में गुज़ारने के कारण रुपया में कुछ आने साहित्यिक हो गई हैं, पर इधर जब से उनके लड़के-बाले हो गए हैं उन्हें अपनी साहित्यिक मनोवृत्ति को सींचने का अवसर नहीं मिला। दिन भर में रसोई के, सफाई के, बच्चों को खिलाने-पिलाने और मनाने के काम में उनका शरीर तथा मस्तिष्क इतने शिथिल हो जाते हैं कि साँझ पड़े जब खाना खा-खिला कर वे

कोई पुस्तक सिरहाने रख, इस ख्याल से बच्चे को लेकर लेटती हैं कि उसे सुला कर पढ़ूँगी तो बच्चे को सुलाते-सुलाते स्वयं भी सो जाती हैं कभी उसके पहले और कभी उसके बाद ! क्योंकि बच्चा यदि सो भी चुका हो तो भी गर्म लिहाफ़ उन्हें बाहर निकलने नहीं देता और पुस्तक बेचारी पड़ी सिरहाने, सर्दी में ठिठुरा करती है। रहा रघु, तो उस बेचारे का सवेरा ही रात के ६ बजे आरम्भ होता है। जब सब सोने लगते हैं। तो वह दफ्तर को जाने के लिये तैयार होता है। किन्तु आज ६ बज गए हैं। और घर के प्रायः सभी लोग जाग रहे हैं।

बात यह है कि भाभी आज रामप्रसाद को लेकर प्रो० राजलाल के घर हो आई है। उनकी पत्नी से उनका सहेलपना भी है। और उमा वैसे भी उन्हें अच्छी लगती है। फिर भाई साहिब की अपेक्षा भाभी अधिक नीतिज्ञ हैं। एक सुसम्पन्न घराने में रिश्ता करना, वे जानती हैं, भाई साहिब के कारोबार को लाभ पहुँचा सकता है। और बेकार रामप्रसाद को कहीं न कहीं काम दिला सकता है। इसी लिये वे प्रो० राजलाल की पत्नी को आश्वासन दे आई हैं कि रिश्ता वे अपने पति को जोर देकर भी स्वीकार करा लेंगी, और रघु की ओर से तो कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। और उन्होंने प्रोफेसर साहिब की पत्नी से कह दिया था कि 'शुभस्य शीघ्रम्' चूंकि सिद्धान्त अच्छा है, इसी लिए रात ही को जब उनके 'वे' (अभिप्राय गिरधारीलाल से है।) खाना वाना खालें तो वे भी प्रो० साहिब को भेज दें। और तभी यह तय हो जाएगा। और इस बात का वादा

प्रो० साहिब की पत्नी ने किया भी था ।

इसी लिये इस समय प्रो० साहिब के आगमन की प्रतीक्षा में सब जाग रहे हैं और आँगन से जागृति का आभास बराबर मिल रहा है क्योंकि मुन्नी को तो नींद लग रही है और वह सोने के लिये शोर मचा रही है, नन्हा भी उसके स्वर से स्वर मिला कर समर्थन कर रहा है, पर भाभी तो भाई साहिब से बातें कर रही हैं, इस लिये उनके पास समय कहाँ ? तभी पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद आँगन से उनकी आवाज आती है—

—वे विरजू, जरा लेजा मुन्नी को, जाकर सुला अन्दर !

और मुन्नी को लिए हुए विरजू प्रवेश करता है। और मुन्नी को पलंग पर सुलाता है।

ड्राईंगरूम सुबह की अपेक्षा कुछ ज्यादह साफ है। साधारणतया इस समय तक तो बच्चे इसे साफ नहीं रहने देते और कोई वस्तु भी अपने स्थान पर पड़ी नहीं रहती, पर आज शाम को इसे फिर एक बार साफ करके कुंडी लगा दी गई थी ।

नौकर लिहाफ देकर जब वापस जाता है तो भाभी भाई साहिब के साथ बातें करती दाखल होती हैं।]

भाई साहिब—मैं कहता हूँ मेरा क्या है, जिस बात में तुम सब राजी उसी में मैं राजी ! आखिर समय तो उसे तुम्हारे साथ ही काटना है !

भाभी—मैं तो फिर यही कहूँगी, एक बार जुआ खेल कर हम देख चुके हैं फिर दोबारा.........

भाई साहिब—(दार्शनिक भाव से) पर हुआ तो यह भी है।

भाभी—पर इसमें हानि की उतनी सम्भावना नहीं !

भाई साहिब—यह कौन जानता है, मनुष्य जो चाहता है। वह कब हुआ है । और हानि तो सदैव उधर ही से होती है, जिधर से उसके होने की तनिक भी सम्भावना नहीं होती। (हँसते हैं।) पर मेरी बात छोड़ो, रघु की इच्छा है, तुम्हारी इच्छा है, तो फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं, कुछ संकोच मात्र है, शायद पुराने संस्कार मेरे रास्ते का रोड़ा बन रहे हैं।

भाभी—मैं कौन सी उदार विचारों की हूँ ?

भाई साहिब—तुम्हारे अध्ययन ने तुम्हें समय के साथ रखा है। पर मेरा कारोबार मुझे और भी पीछे ले गया है। किन्तु इस से क्या ? पिता क्या पुत्रों के सुख के लिये अपने विचारों का गला नहीं घोंट देते, अपने सिद्धान्तों को नहीं त्याग देते ? (गला कुछ आर्द्र हो जाता है।) रघु मुझे क्या पुत्र से अधिक प्रिय नहीं ?

भाभी—यही तो मैं भी कहती हूँ। (लम्बी साँस लेती है।) तीन वर्ष का था, जब माँ जी परलोक सिधार गई थीं। तब से इसे अपने लड़के की भाँति हमने पाला है । श्रद्धा वह हमसे रखता है, आप कहेंगे तो वह रक्षा से विवाह भी कर लेगा, पर आयु-पर्य्यन्त जलता-भुनता रहेगा।

भाई साहिब—मैं तो तुम्हारे ही ख्याल से कहता था। विमला पर तो तुम्हारा शासन चलता था। आँख बन्द करके वह तुम्हारी आज्ञा मान लेती थी । और फिर जब वह पढ़-लिख गई तब भी

उसका स्वभाव नहीं बदला। आज्ञाकारिणी वह वैसी की वैसी ही रही, पर यह आधुनिक युग की शिक्षित लड़कियाँ तुम्हारी हर उचित-अनुचित बात मानने से रहीं।

भाभी—(गर्व से) मैं रघु की माँ नहीं, उसकी भावज हूँ। इतनी स्वार्थपरता मुझ में नहीं कि अपने आराम के निमित्त उसके जीवन को सदैव के लिये कटु बना दूँ।

भाई साहिब—(चुप)

भाभी—देखिए, मुझे तो प्रो० रामलाल की लड़की पसन्द है। उसके रूप-लावण्य के आगे रक्षा बेचारी क्या ठहरेगी?

भाई साहिब—(चुप)

भाभी—और फिर वह ग्रेजुएट है और अपने विषय में सदैव अच्छे नम्बरों पर पास हुई है।

भाई साहिब—(चुप)

भाभी—और गाना बजाना वह जानती है। नृत्य भी बंगाल के एक प्रसिद्ध कलाकार से वह सीख रही है। और यही सब तो रघु चाहता है।

भाई साहिब—(जैसे अपना समर्थक ढूँढते हुए) रामप्रसाद की क्या राय है?

भाभी—रामप्रसाद, (हँसती है।) उससे अगर कोई कहे, तो आँखें बन्द करके वेदी पर जा बैठे!

भाई साहिब—(कहकहा मार कर हँस पड़ते हैं।) मुँह बाए मक्खी नहीं पड़ती।

(रामप्रसाद प्रवेश करता है ।)

रामप्रसाद—आप मेरा अपमान करते हैं, मुझ से यदि कोई कहे तो साफ़ इनकार कर दूँ ।

भाभी—तो तुम्हें इसकी भी आशा है कि तुम्हें कोई कहेगा, मुँह धो रखो !

[रामप्रसाद पहले तो खसियाना हो जाता है, फिर एकदम कहकहा मार कर हँस पड़ता है, उसके साथ ही भाई साहिब और भाभी भी हँसते हैं ।)

भाई साहिब—आखिर तुम्हारी सम्मति क्या है ?

रामप्रसाद—(**तनिक खसियानेपन के साथ**) मुझे तो विवाह करना नहीं, इस लिये मेरी राय कोई महत्त्व नहीं रखती, पर मेरा विचार है, रघु उसे पसन्द करेंगे । आज जो कंसर्ट हो रही है । (**घड़ी की ओर देखकर**) या अब तक हो चुकी होगी, उसमें उमा भाग ले रही है । और रघु भी शायद उसे देखने गए हैं ।

भाई साहिब—तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

रामप्रसाद—बहिन के कहने से मैं उन्हें अशोक के घर देखने गया था, वहाँ से मालूम हुआ, राजेन्द्र के घर गए हैं । वहाँ गया तो पता चला कि वे शायद आज कंसर्ट देखने जाएँगे । (**फिर घड़ी की ओर देखता है ।**) और शायद अब वह समाप्त ही हो चुकी हो । ७ से ६ तक का समय था ।

[बिरजू सुप्त-प्राय बच्चे को कंधे से लगाए आता है ।]

बिरजू—यह वहाँ रसोई में ही बैठा-बैठा सो रहा था।

भाभी—वहाँ चारपाई पर लिटा दे इसे, और जा जल्दी-जल्दी सब काम समाप्त कर डाल!

बिरजू—छोटे बाबू का खाना......

भाभी—वह आ ही रहा होगा। अलग रख छोड़ और चूल्हे में कोयले गर्म रहने दे।

(नौकर चला जाता है।)

रामप्रसाद—उमा कलाकार तो अव्वल दर्जे की है। सुशिक्षित है। और सुसंस्कृत भी। प्रोफेसर राजलाल की लड़की है और यही सब कुछ भाई रघु चाहते हैं!

भाई साहिब—(**अचानक गम्भीर होकर**) पर हमारे घर की एकता उसके आने से स्थिर न रह सकेगी। दुर्बल तिनके की भाँति वह उसे उड़ाए लिए फिरेगी।

भाभी—किन्तु सब शिक्षित बुरी और सब अशिक्षित अच्छी नहीं होतीं! लाडो, बताइये, कै श्रेणी तक पढ़ी है? आते ही दो-दो के चार-चार कर दिए।

भाई साहिब—शिक्षा को मैं इतना बुरा नहीं, कहता, तुम ने घर में इतना पढ़ा है, मैंने तुम्हें नहीं रोका, पर कालेज की इन अधिक पढ़ी-लिखी लड़कियों से डर लगता है।

भाभी—और मैं कहती हूँ कम पढ़ी लड़कियों से डरना चाहिए, जो लड़की अधिक पढ़ जाती है, जीवन की वास्तविकता उसके सामने खुल जाती है। वह जीवन को और भी गहरी नज़र से

देखना सीख जाती है। बाह्य-संसार का उसे अधिक पता हो जाता है, समय आने पर वह जीवन के युद्ध में पति पर बोझ न बन कर, उसके साथ सब विपत्तियाँ जूझ सकती है। और यह 'न तीतर न बटेर' की तरह की लड़कियाँ थोड़ा पढ़ कर ही अपने आपको बहुत कुछ समझने लग जाती हैं। रही एकता की बात, तो मैं कहती हूँ, हमें इतना स्वार्थप्रिय न होना चाहिए। हमने उसे पाला है, पढ़ाया-लिखाया है, अपना कर्तव्य समझ कर! अब उसका बदला हम क्यों चाहें? यदि वह आपका भाई न होता तो क्या आप उसे पढ़ाते? और क्या मैं ही इस प्रकार उसका लालन-पालन करती?

भाई साहिब—(चुप!)

भाभी—परमात्मा ने हमें सब कुछ दिया है। वे अलग होना चाहें, अपने घर प्रसन्न रहें। एकता अच्छी है, पर स्वजन की आत्मा को बन्दी बना कर उसे प्राप्त करना अच्छा नहीं!

भाई साहिब—(हथियार डालते हुए हँस कर) मैं तुम से कब जीत सका हूँ। तुम उसके साथ भी पटा लोगी। (हँसते हैं।)

भाभी—तो देखिए, यदि प्रोफेसर साहिब आएँ—उनकी पत्नी ने कहा था मैं उन्हें आज ही रात को भेजूँगी, और अब न आए तो कल सुबह अवश्य आएँगे—आप कृपा करके इतना करें, कि उनके सामने कहीं पढ़ी-लिखी लड़कियों की निन्दा न शुरू कर दें, और आधुनिक शिक्षा और उसके दोषों पर भाषण न झाड़ने लगें!

भाई साहिब—(मात्र हँसते हैं।)

हो। कुछ भी हो वह उन्हें पसन्द है, हो सकता है रघु ने भी उमा को देखा हो, न देखा हो तो मैं दिखा दूँगी, और यह मेरे जिम्मे रहा कि वह मान जाएगा, (धीरे से) मान जाएगा, (हँसती है।) वह आयुपर्य्यन्त मेरा आभारी रहेगा (फिर हँसती है।) और यदि वे शगुन लेने को कहें तो आप इनकार न कीजिएगा। आप यही कहिएगा कि हमें कोई आपत्ति नहीं। यदि रघु को स्वीकार है तो हमें भी स्वीकार है।

[दूर, बाहर डेवढ़ी से घंटी बजने की आवाज आती है।]

भाभी—और मैं फिर आप से कहती हूँ कि बस्ती वालों से ये रिश्तेदार बहुत अच्छे हैं। प्रतिष्ठित, सभ्य और संस्कृत और फिर वैसे भी बुरे नहीं। प्रोफेसर साहिब पाँच सौ रुपया वेतन पाते हैं। मैं अब रघु का उन लँडोरों के यहाँ विवाह नहीं करना चाहती, जिनके न घर है न घाट; जो न आए-गए को बिठा सकते हैं, न खाने-पीने को पूछ सकते हैं।

(बिरजू प्रवेश करता है)

बिरजू—बाबू जी, बाहर आपको कोई बुला रहे हैं।

भाई साहिब—कौन हैं, नाम नहीं पूछा ?

बिरजू—जी कोई प्रोफेसर साहिब हैं।

भाभी—(उल्लास-भरी जल्दी से) प्रोफेसर रामलाल ही होंगे, जाइए आप जाकर लिवा लाइये।

भाई साहिब—तुम जरा ठीक से बैठो, मैं जाकर लाता हूँ।

भाभी—(राम प्रसाद से) तुम इधर कुर्सी पर आ बैठो (बिरजू से) उस कुर्सी को इधर कर दो बिरजू और वह पर्दा ठीक कर दो। मैं चाहती हूँ राम प्रसाद, कि घर तो अच्छा हो; कोई आए तो बैठने को जगह मिले; बातें तो कोई कर सके। तुमने देखा नहीं प्रोफेसर साहिब की पत्नी कितनी सुसंस्कृत हैं। बोलती हैं तो जैसे फूल तौलती हैं। यह नहीं कि बैठो पीछे और ताने पहले सुनो। रघु की पहली सास को तो तुम जानते हो।

रामप्रसाद—पर अब तो वह मर गई बेचारी।

भाभी—घर तो वही है। और फिर रामप्रसाद, संसार में कौन लाभ का सौदा नहीं करना चाहता? बाजार में आदमी दो पैसे का मिट्टी का बर्तन लेने जाए तो चार जगह पूछता है; दस बार ठोक-बजा कर देखता है। फिर जीवन के इस सब से बड़े सौदे मे क्यों इतनी उदासीनता से काम लिया जाए? अब अच्छा रिश्ता मिलता है तो क्यों छोड़ा जाए? (धीरे से भेद-भरे स्वर में) और फिर प्रोफेसर साहिब की पत्नी ने कहा था कि हजार रुपया वे दहेज के अतिरिक्त रखेंगे।

भाई साहिब—(आँगन में ही) प्रोफेसर राजलाल आए हैं। (फिर अपने पीछे आते हुए प्रोफेसर साहिब से) आइए प्रोफेसर साहिब! [दूसरे क्षण भाई साहिब के पीछे प्रोफेसर
राजलाल और उनकी पत्नी प्रवेश करते हैं।]

प्रोफेसर साहिब अधेड़ आयु के व्यक्ति हैं।
एक सुरुचि-पूर्ण सूफियाना सूट पहने हैं। पर

सिर पर उनके पगड़ी है—वे उन पुराने व्यक्तियों में से हैं, जिनके संस्कार तो पुराने ही हैं, पर आधुनिक शिक्षा और विचार-स्वातन्त्र्य से, जो इतने सहिष्णु हो गए हैं कि बहुत सी बातों के सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ चुके हैं, और जो हर प्रकार के विचारों को अविकृत भाव से सुन लेते हैं और घर के प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने विचारों के अनुसार चलने देते हैं।

प्रोफेसराइन सौम्य तथा गम्भीर महिला हैं, जो वस्त्रों और उनके चुनाव में सुरुचि से काम लेना जानती हैं। छिछोरापन, जो विपन्न से अचानक सम्पन्न हो जाने वाले लोगों की वेष-भूषा चाल-ढाल और बात-चीत से प्रकट हुआ करता है, उनमें नाम को नहीं, आयु काफी है, पर सुन्दरता अब भी वैसी ही बनी हुई है और मुस्कराती हैं तो अब भी ऐसा मालूम होता है कि जैसे कोई फूल सोया-सोया मुस्करा दिया हो।

[भाभी तथा रामप्रसाद खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं।]

भाई साहिब—(पत्नी की ओर इशारा करते हुए, प्रोफेसर साहिब से) मेरी सहधर्मिणी! (रामप्रसाद की ओर इशारा

करके) इनके भाई !!

[सब परस्पर अभिवादन करते हैं, भाभी और प्रोफेसराइन एक दूसरे को देख कर मुस्कराती हैं।]

भाई साहिब—(कुर्सियों की ओर संकेत करके) आइए पधारिए !

(सब अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।)

भाभी—(हँस कर प्रोफेसराइन से) रघु तो अभी नहीं आया। आज इतवार था, सुबह ही का गया हुआ है, शायद आ ही रहा हो।

(दोनों जरा हँसती हैं।)

भाभी—(भाई साहिब की ओर संकेत करते हुए) इनसे मैंने कह दिया है (हँसती है।) और इन्होंने स्वीकार भी कर लिया है, मुझे तो उमा पसन्द है।

प्रोफेसर साहिब—(हर्ष से) आज हिसार के अकाल-पीड़ितों के लिये एस० आर० सोसाइटी की ओर से जो कंसर्ट हुई, उसमें उमा ने भी भाग लिया था, आप शायद गए नहीं ?

भाई साहिब—(दीर्घ निश्वास को दबाकर) कारोबारी आदमियों के भाग्य में यह सब कहाँ ? महीने में एक दिन छुट्टी होती है और घर के बीसियों काम........

प्रो० साहिब—(हँसते हुए विनम्र-अभिप्राय से) उमा ने 'मणिपुरी' नृत्य का जो नमूना दिखाया, उसे दर्शकों ने बेहद पसन्द किया।

भाभी—बस, हमारा रघु भी ऐसी ही संगिनी चाहता है (भाई

साहिब की ओर देख कर हँसते हुए) क्यों जी, रसोयिन या दर्जन वह नहीं चाहता !

[भाई साहिब के अतिरिक्त सब हँसते हैं, भाभी सशंक नेत्रों से उनकी ओर देखती हैं ।]

भाई साहिब—(उपेक्षा से—भूल कर कि भाभी ने उनसे क्या प्रार्थना की थी) पढ़ी-लिखी लड़कियों को............

भाभी—(भाँप कर जल्दी से) यह खुद पसन्द करते हैं।(हँसती हैं।) अनपढ़ का जीवन भी कोई जीवन है, कुएँ के मेंढ़क की तरह अपने ही संसार में मस्त !

(जरा जोर से हँसती हैं।)

भाई साहिब—(जो अब भी नहीं समझे, उसी उपेक्षा के स्वरमें) ये कालेज की लड़कियां.........

भाभी—(हँस कर) उनसे हजार दर्जे अच्छी ही तो हैं। (फिर निमिष मात्र के लिएभाई साहिब की ओर देख कर, कि अब आप को बात का अवसर न मिलेगा।) घर में यदि मुझ जैसी ने रो-पीटकर समाचार-पत्रादि पढ़ना सीख भी लिया तो इससे क्या होता है। भारत दिन-प्रतिदिन उन्नति के पद पर अग्रसर है। आप की उमा से बातें करके तो मेरा हृदय गद्गद हो गया। प्रत्येक विषय पर वह किस सुगमता से बात-चीत कर सकती है। मैं सोचती हूँ, वह आ जाएगी तो मैं भी उससे कुछ सीख सकूँगी।

प्रोफेसराइन—(विनम्र मुस्कान से) नहीं जी कालेज का ज्ञान छिछला होता है, गहराई तो जीवन के वास्तविक अनुभव ही उसे

प्रदान करते हैं। उसे अभी बहुत कुछ आप के चरणों में बैठ कर सीखना होगा।

[बिजली की बत्तियाँ कुछ क्षण के लिये मद्धम हो जाती हैं।]

प्रो० साहिब—(चौंक कर और घड़ी की ओर देख कर) ओह! ६ बज गए काफी देर हो गई (हँसते हैं।) आप को भी आराम करना होगा। बात यह है कि कल मैं बाहर जा रहा हूँ, और मैं इस ओर से निश्चिन्त हो जाना चाहता था।

[जेब से पौंड निकाल कर अपनी पत्नी को देते हैं, वह भाभी की ओर बढ़ाती हैं।]

—ये स्वीकार कीजिए !

भाई साहिब—(चौंक कर) यह पौंड... .. !

प्रो० साहिब—यदि आप को कोई आपत्ति न हो··· ······

भाभी—(पौंड लेते हुए) हम तो इसे अपना सौभाग्य समझेंगे हाँ, यदि रघु आ जाता तो अच्छा था, वैसे हम राजी हैं।

प्रो० साहिब—उन्हें हम मना लेंगे।

भाई साहिब—(कुछ उद्विग्न होकर) पर यह तो कुनेत * का महीना है।

प्रो० साहिब—(हँसते हैं।) किन्तु हम शगुन तो नहीं दे रहे, वह सब तो बाद में यथाविधि होगा। यह तो समझ लीजिए कि लड़का हमारा हो गया।

---

* कुनेत के महीने में कोई शुभ कार्य्य आरम्भ नहीं करते हैं।

भाभी—(हँसती है ।) वह कहाँ जा रहा है, वह तो आप ही का है ।

प्रो० साहिब—अच्छा तो हमें आज्ञा दीजिए !

(उठते हैं ।)

परमात्मा करे हम दिन प्रतिदिन एक दूसरे के अधिक समीप होते जाएँ ।

(चलते हैं । भाई साहिब भी साथ चलते हैं ।)

प्रो० साहिब—नहीं, नहीं आप बैठिए ।

[भाई साहिब केवल हँसते हैं और उन्हें छोड़ने जाते हैं । भाभी बिजली के प्रकाश में चमकते हुए उस पौंड को देखती हैं और उनकी आँखें अधिक से अधिक खुलती जाती हैं । और उनमें एक विशेष चमक आती जाती है । जैसे उस पौंड के स्वर्ण-पट पर वे अपने देवर और उस कान्त-कामिनी-उमा का विवाह देखती हैं, और उस दहेज को सहेजती हैं जो विवाह में आया है, और जैसे सहस्र रुपयों की खन-खन का शब्द सुनती हैं ।]

रामप्रसाद—तो अब रघुनन्दन फँस गए ।

(हँसता है ।)

भाभी—(जैसे जग कर उसकी ओर देखती हैं । फिर देती है ।) अब कहाँ जाएगा ?

[भाई साहिब प्रोफेसर साहिब को छोड़ कर
वापस आते हैं।]

भाभी—मैं तो डर रही थी, कि आप फिर भाषण देने लगे, देखिए, परमात्मा के लिये कुछ दिन अपनी जिह्वा को अपने बस में रखिए, मैं यह मानती हूँ, कि आप को ये सब नये विचार पसन्द नहीं, आप इतनी बढ़ी हुई स्वतन्त्रता के भी समर्थक नहीं, पर शादी आप को तो उस से करनी नहीं, और रहा रघु, तो सुबह आपने उसके विचार सुन ही लिए थे, वह इसी में प्रसन्न है। और एक बात मैं आपको बता दूँ, हम स्त्रियाँ अपने आपको पुरुषों के अनुसार ढाल लेना खूब जानती हैं।

भाई साहिब—(हँसते हैं।) शायद तुम आधुनिक नारी से अभिज्ञ नहीं हो, पहले अवश्य स्त्रियाँ पुरुषों के अनुसार अपने आप को ढाला करती थीं, पर अब तो पुरुष ही स्त्री के अनुसार अपने आप को ढालते हैं।

[फिर हँसते हैं। रामप्रसाद अँगड़ाई लेकर
उठता है।]

भाभी—रामप्रसाद बैठो अभी, नींद तो अब जल्दी आएगी नहीं, आओ भाई एक दो बाजियाँ ताश ही खेलें, तब तक रघु भी आ जाएगा।

(रामप्रसाद ताश उठाता है।)

भाई साहिब—हटाओ जी मैं सोऊँगा।

भाभी—आपको मेरी सौगन्ध.........

भाई साहिब—(कुर्सी पर बैठते हुए) अच्छा भाई लाओ। (पत्ते फेंटते हुए) देखो मैं अपने आपको तुम्हारे अनुसार ढाल रहा हूँ या नहीं।

(सब हँसते हैं।)

पटपरिवर्तन

दूसरा दृश्य

कंसर्ट समाप्त हो चुकी है। और एक तो बेचारे अकाल-पीड़ितों की सहायता करने की प्रबल-भावना और दूसरे उच्च-श्रेणी के कलाकारों को स्टेज पर देखने की उत्कट-लालसा—इस लिये वह काफी सफल हुई है। बाहर, हाल में दर्शक अभी तक कुमारी उमा और श्रीमती राजेन्द्र को स्वयं इस सफलता पर बधाई देने के लिये खड़े है। पर वे ग्रीन-रूम (स्टेज का पिछला कमरा) में कपड़े बदल रही हैं। इसलिए सभा के मन्त्री मिस्टर शर्मा बड़ी विपत्ति में फँसे हुए हैं। बहुत से दर्शकों से उन्होंने स्वयं गुलदस्ते ले लिए हैं। और उनसे वादा कर दिया है कि वे उनको पहुँचा दिए जाएँगे, पर कुछ ऐसे भी हैं, जो स्वयं मिल कर ही उन्हें बधाई देना चाहते हैं। चूँकि श्रीमती राजेन्द्र का नृत्य बहुत सफल रहा है, इस लिये रघु भी जाकर फूलों का एक गुलदस्ता खरीद लाया है और उसने मन्त्री पर जोर दिया है कि वह कमरे के दरवाजे पर दस्तक देकर पता लगाए कि कपड़े बदलने से उन्हें अवकाश मिला है या नहीं।

जिस समय मन्त्री दरवाजे पर दस्तक देता है, उसी समय पर्दा उठाता है। और ग्रीन-रूम में कुमारी उमा, जो कपड़े बदल चुकी है, एक पाँव कुर्सी पर रख कर अपनी गुरगाबी के तस्मे बाँधती दिखाई देती है।

यह कमरा कुछ छोटा है, और बिजली की बत्ती भी यहाँ एक ही है। बहुत सामान इस कमरे में पड़ा है। सामने एक बड़ी आलमारी है, जिसके पट खुले हैं। और उसके बड़े बड़े खानों में विभिन्न प्रकार के वस्त्र तथा दूसरा सामान पड़ा है। दायीं ओर कोने मे एक बड़ा कद-आदम शीशा रखा है। उसके समीप ही बायीं दीवार में शृंगार का मेज है, जिसके चौखटे में एक छोटा सा शीशा लगा है। इस पर पाउडर, क्रीम, बिंदी और शृंगार का दूसरा सामान पड़ा है। खूँटियों पर कपड़े टंगे हैं। बायीं दीवार के साथ कुछ संदूक तथा ट्रंक रखे हैं। कमरे में कुछ कुर्सियाँ बिखरी पड़ी हैं। एक दो पर बेतरतीबी से कपड़े पड़े हैं। फर्श पर एक दरी बिछी है, जिसमें बीसियों सिलवटें हैं।

दरवाजे दो हैं। एक बायीं दीवार में इस ओर के कोने पर और दूसरा सामने की दीवार के दायें कोने पर। बायों ओर का दरवाजा रंग-मंच की ओर खुलता है और सामने का एक दूसरे कमरे को जाता है। कुछ क्षण बाद टिक-टिक की आवाज सुनाई देती है।]

उमा—(बारीक और तीखी आवाज) आ जाइये !

(मि० शर्मा कुछ गुलदस्ते लिये प्रवेश करते हैं।)

शर्मा—(हँसते हुए) हमारी सब कंसर्टों से यह सफल रही, बाहर लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। बहुतों से मैंने गुलदस्ते ले लिये—कालेज के लड़के, (हँसता है।) पर कुछ आप लोगों के परिचित भी हैं। (फिर हँस कर) कपड़े बदल लिए आपने ? मिसेज राजेन्द्र कहाँ हैं ?

दूसरा दृश्य

कंसर्ट समाप्त हो चुकी है। और एक तो बेचारे अकाल-पीड़ितों की सहायता करने की प्रबल-भावना और दूसरे उच्च-श्रेणी के कलाकारों को स्टेज पर देखने की उत्कट-लालसा—इस लिये वह काफी सफल हुई है। बाहर, हाल में दर्शक अभी तक कुमारी उमा और श्रीमती राजेन्द्र को स्वयं इस सफलता पर बधाई देने के लिये खड़े है। पर वे ग्रीन-रूम (**स्टेज का पिछला कमरा**) में कपड़े बदल रही हैं। इसलिए सभा के मन्त्री मिस्टर शर्मा बड़ी विपत्ति में फँसे हुए हैं। बहुत से दर्शकों से उन्होंने स्वयं गुलदस्ते ले लिए हैं। और उनसे वादा कर दिया है कि वे उनको पहुँचा दिए जाएँगे, पर कुछ ऐसे भी हैं, जो स्वयं मिल कर ही उन्हें बधाई देना चाहते हैं। चूँकि श्रीमती राजेन्द्र का नृत्य बहुत सफल रहा है, इस लिये रघु भी जाकर फूलों का एक गुलदस्ता खरीद लाया है और उसने मन्त्री पर जोर दिया है कि वह कमरे के दरवाजे पर दस्तक देकर पता लगाए कि कपड़े बदलने से उन्हें अवकाश मिला है या नहीं।

जिस समय मन्त्री दरवाजे पर दस्तक देता है, उसी समय पर्दा उठाता है। और ग्रीन-रूम में कुमारी उमा, जो कपड़े बदल चुकी है, एक पाँव कुर्सी पर रख कर अपनी गुरगाबी के तस्मे बाँधती दिखाई

यह कमरा कुछ छोटा है, और बिजली की बत्ती भी यहाँ एक ही है। बहुत सामान इस कमरे में पड़ा है। सामने एक बड़ी आलमारी है, जिसके पट खुले हैं। और उसके बड़े बड़े खानों में विभिन्न प्रकार के वस्त्र तथा दूसरा सामान पड़ा है। दायीं ओर कोने मे एक बड़ा कद-आदम शीशा रखा है। उसके समीप ही बायीं दीवार में शृंगार का मेज है, जिसके चौखटे में एक छोटा सा शीशा लगा है। इस पर पाउडर, क्रीम, बिंदी और शृंगार का दूसरा सामान पड़ा है। खूँटियों पर कपड़े टंगे हैं। बायीं दीवार के साथ कुछ संदूक तथा ट्रंक रखे हैं। कमरे में कुछ कुर्सियाँ बिखरी पड़ी हैं। एक दो पर बेतरतीबी से कपड़े पड़े हैं। फर्श पर एक दरी बिछी है, जिसमें बीसियों सिलवटें हैं।

दरवाजे दो हैं। एक बायीं दीवार में इस ओर के कोने पर और दूसरा सामने की दीवार के दायें कोने पर। बायीं ओर का दरवाजा रंग-मंच की ओर खुलता है और सामने का एक दूसरे कमरे को जाता है। कुछ क्षण बाद टिक-टिक की आवाज सुनाई देती है।]

उमा—(बारीक और तीखी आवाज) आ जाइये!

(मि० शर्मा कुछ गुलदस्ते लिये प्रवेश करते हैं।)

शर्मा—(हँसते हुए) हमारी सब कंसर्टों से यह सफल रही, बाहर लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। बहुतों से मैंने गुलदस्ते ले लिये—कालेज के लड़के, (हँसता है।) पर कुछ आप लोगों के परिचित भी हैं। (फिर हँस कर) कपड़े बदल लिए आपने ? मिसेज राजेन्द्र कहाँ हैं ?

उमा—(मादक मुस्कान के साथ) अन्दर कपड़े बदलने गई हैं।

शर्मा—मैं आप लोगों का अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे तो डर था, कि खर्च भी न निकलेगा। आज तीन सिनेमाओं में सफल चित्रपट चल रहे हैं किन्तु परमात्मा ने लाज रख ली। आप लोगों की कृपा से खर्च निकल जायगा और दो-एक सौ रुपया हिसार के......

उमा—कितने के टिकट बिके ?

शर्मा—लगभग आठ सौ के बिक ही गए।

उमा—(आश्चर्य से) तो केवल दो सौ उन... . ...

शर्मा—इतना भी भेजा जा सके तो मैं समझता हूँ, बड़ी बात है। दो सौ रुपया तो हाल के किराये और स्टेज के निर्माण ही में खर्च हो गया। और फिर कुछ व्यवसायिक रागी आए हुए थे। उनको और उनके साज़िंदों को काफी रकम देनी पड़ी, फिर ताँगों, टिकटों, और विज्ञापनों का खर्च (विवशता से) कोई एक मुसीबत हो तो बताऊँ। (हँसता है।) यह भी सब आप लोगों की कृपा से हो गया (फिर हँस कर और बात का रुख पलट कर) आज श्रीमती राजेन्द्र ने तो कमाल कर दिया।

[श्रीमती राजेन्द्र एक बाज़ू में नृत्य के कपड़े लटकाए और दूसरे से साड़ी का पल्ला सँवारती हुई अन्दर के कमरे से प्रवेश करती हैं।]

शर्मा—(हँस कर) मैं यही कह रहा था कि आज तो आपने कमाल कर दिया।

श्रीमती राजेन्द्र—(कपड़ों को कुर्सी की पीठ पर रख कर, बड़े

शीशे के सामने जाते हुए) मैं तो अभी इस कला के क, ख से भी परिचित नहीं हुई।

शर्मा—यह तो आप जनता से पूछिए !

उमा—जो स्टेज से भाभी को जाने ही न देती थी।

(हँसती है, मादक हँसी !)

शर्मा—और इन गुलदस्तों से पूछिए। (हँस कर) मैं यह कहने आया था कि बाहर अंग्रेजी दैनिक 'आज' के स० सम्पादक मि० रघुनन्दन आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैंने उन से कहा भी कि लाइए गुलदस्ता मुझे ही दे दीजिए। पर कहने लगे इस सफलता पर मैं स्वयं उन्हें जाकर बधाई दूँगा।

श्रीमती राजेन्द्र—मि० रघु.........

शर्मा—जी मैंने तो कहा था.........

श्रीमती राजेन्द्र—आप उन्हें इधर ही भेज दीजिए !

[शर्मा चले जाते हैं। श्रीमती राजेन्द्र शृंगार की मेज पर जाकर बाल बनाती हैं और बूट के तस्मे बाँध कर और साड़ी ठीक करके कुमारी उमा भी बड़े शीशे के सामने जाती हैं। मि० शर्मा के जाने के बाद जो सम्भाषण होता है, उसमें वे साथ-साथ अपना शृंगार भी किए जाती हैं।]

उमा—(बड़े शीशे के पास से, बाल बनाते हुए कनखियों से देख कर) मि० रघु को आप जानती हैं ?

श्रीमती राजेन्द्र—बहुत अच्छी तरह !

उमा—देर से परिचय है आपका ?

श्रीमती राजेन्द्र—देर से तो नहीं । प्रोफेसर साहिब के लेख तो तुमने देखे ही होंगे, इनके पत्र में देर से निकलते हैं, ये वहाँ हाल ही में आए हैं। साहित्य का विभाग इन्हे ही सौंपा गया है। तभी से उनकी और इनकी मैत्री हो गई है।

उमा—कैसे आदमी हैं ?

श्रीमती राजेन्द्र—(तनिक मुस्करा कर) क्या मतलब है तुम्हारा ?

उमा—कैसे विचार रखते हैं, उदार या अनुदार ?

श्रीमती राजेन्द्र—किस मामले में, इनका पत्र तो समय का साथ देता है, न उदार न अनुदार........

उमा—ओ भाभी ! मैं पूछती हूँ शादी-विवाह के मामले में !

श्रीमती राजेन्द्र—(सशंक नेत्रों से मुस्करा कर) क्यों !

उमा—यों ही पूछा ।

(शोफर प्रवेश करता है ।)

शोफर—बीबी जी कितनी देर में चलेंगी।

उमा—अभी चलती हूँ पिता जी कहाँ हैं।

शोफर—वे तो मध्य ही में उठ कर चले गए थे ।

उमा—और माँ जी ?

शोफर—वे भी उनके साथ गई हैं।

उमा—तो चल मै आती हूँ, भाभी ज़रा तैयार हो लें।

(शोफर चला जाता है ।)

शोफर=मोटर चलाने वाला ।

उमा—आज घर में माँ जी कुछ इनका जिक्र कर रही थीं, शायद इनकी माँ आई थीं।

श्रीमती राजेन्द्र—इनकी माँ नहीं है, भाभी हैं।

उमा—तो भाभी ही होंगी। वे तो बड़ी उदार विचारों की मालूम होती हैं, मुझे खूब पसन्द आईं।

श्रीमती राजेन्द्र—(कृत्रिम अनभिज्ञता से) क्या करने आई थीं!

उमा—(लजा कर) अब तुम तो भाभी......

[अँगड़ाई लेती है।]

श्रीमती राजेन्द्र—अच्छा यह बात है, तो आदमी रघु बुरा नहीं। विचार कैसे रखता है, मैं नहीं जानती, पर है मिलनसार, हँसमुख, अंग्रेजी दैनिक ....

उमा—वह सब मैं जानती हूँ।

श्रीमती राजेन्द्र—तो वह आ तो रहा है, पसन्द कर लेना (हँसती है।) और बातों-बातों में उस के विचार भी जान लेना।

(दोनों हँसती हैं।)

[बाहर टिक-टिक की आवाज सुनाई देती है।]

श्रीमती राजेन्द्र—आइए!

[रघु नरगस के फूलों का गुलदस्ता लिए दाखिल होता है।]

रघु—(हँसते हुए।) मैंने कहा, मैं भी भाभी को बधाई दे आऊँ। तुम ने भाभी इस कला में इतनी उन्नति प्राप्त कर ली है। मुझे मालूम न था।

[गुलदस्ता उस की ओर बढ़ाता है । और तब उमा को देख कर सहसा गम्भीर हो जाता है ।]

श्रीमती राजेन्द्र—(तनिक हँस कर) आप दोनों का परस्पर परिचय नहीं ?—ओह ! (हँसती हैं ।) यह हैं मि० रघुनन्दन—अंग्रेजी 'आज' के स० सम्पादक और प्रसिद्ध पत्रकार और ये हैं मिस उमा, प्रो० राजलाल की सुपुत्री ! बी० ए० में आप प्रथम श्रेणी में पास हुई और नृत्य कला में तो......

रघु—सुना तो पहले भी था, पर आज इनकी कला देखने का भी अवसर मिला । देख कर मैं मुग्ध हो गया । नमस्कार !

उमा—(तनिक सकुचाते और लजाते हुए) नमस्कार !!

(दोनों परस्पर अभिवादन करते हैं ।)

श्री मती राजेन्द्र—(मौजे डालने के लिए कुर्सी पर बैठते हुए) बैठ जाओ रघु, तुम भी बैठो उमा, खड़ी क्यों हो, थकी नहीं अभी ?

[उमा सिर्फ हँसती है, रघु एक बार उसकी ओर देखता है, तभी बाहर टिक-टिक की आवाज सुनाई देती है ।]

श्रीमती राजेन्द्र—आइए !

[दरवाजा खुलता है और आगे आगे श्रीमती अशोक, प्रसन्न, उत्फुल्ल और पीछे-पीछे मि० अशोक बच्ची को उठाये हुए प्रवेश करते हैं । चूँकि रघु की पीठ उनकी ओर है इस लिए वे बधाई देने के जोश में उसे नहीं पहचान पाते ।]

श्रीमती राजेन्द्र—(श्रीमती अशोक को देखकर) ओह, आप हैं !

श्रीमती अशोक—(उल्लास भरे स्वर में) हम ने कहा, हम भी आपको बधाई......

[रघु मुड़ता है और अशोक से उसकी आँखें चार होती हैं ।]

अशोक—ओह ! मि० रघु भी हैं।

[श्रीमती अशोक चौंक पड़ती हैं और वाक्य अपना पूरा नहीं कर पातीं।]

रघु—नमस्ते भाभी !

श्रीमती अशोक—(मरी हुई आवाज में) नमस्ते !

मि० अशोक—(पत्नी की सहायता को आते हुए) इनका तो स्वास्थ्य बेहद खराब था (खाँसते हैं ।) रात सोई नहीं, सुबह भी सिर में दर्द था पर मैंने कहा कि आज उमा और आप भाग ले रही हैं . हींहीं...हींहीं (हँसते हैं)......

उमा—भाभी, नमस्कार।

[अब श्रीमती अशोक केवल सिर के इशारे ही से अभिवादन का उत्तर देती हैं, इतनी शिथिलता महसूस कर रही हैं वे।]

अशोक—और फिर मैंने कहा कि मन ही बहल जाएगा। (एक खोखला कहकहा लगाते हैं।) रोग से बढ़ कर रोग तो रोग का ख्याल करते रहना है। (फिर हँसते हैं।) क्यों है न ? (समर्थन के लिये सबकी ओर देखते हैं, पर आँखें किसी से भी

नहीं मिलाते, फिर जैसे अपने ही से, हँस कर) रोग को, जहाँ तक सम्भव हो, पास न आने दिया जाए, बस ! यही रोग की सब से बड़ी दवा है।

[फिर एक खोखला कहकहा लगाते हैं। गोद से लगी ऊषा रो पड़ती है।]

मि० अशोक— पुचकारते हुए) पु...पु..... (पत्नी की ओर देख कर) चलिए, अब यह रोने लगेगी और फिर मौसिम बदल रहा है और स्वास्थ्य आपका ठीक नहीं, और गरम कोट आप घर छोड़ आई हैं। (खसियानी हसी हँस कर, सबसे) नमस्कार ! नमस्कार !! नमस्कार !!!

(हँसते हुए घबराए से चले जाते हैं)

श्रीमती राजेन्द्र—(उन्हें बाहर जाते निर्निमेष देखती हैं, फिर जैसे अपने आप) इन दोनों का वैवाहिक जीवन भी कैसा स्वर्ग है !

रघु—स्वर्ग !

[अनायास कहकहा लगा कर हँस देता है।]

उमा—मैं भाई अशोक को पसन्द करती हूँ। अपना जीवन उन्होंने अत्यन्त सुन्दर बना रखा है, कहीं क्रोध नहीं, झगड़ा नहीं, लड़ाई नहीं।

श्रीमती राजेन्द्र—(ओठों में, जैसे अपने से) उधर हमारे प्रोफेसर साहिब हैं कि हर बात पर दर्शन......

उमा—प्रोफेसर साहिब तो मामी, फिर अच्छे हैं, मैंने घर देखे हैं, जो नरक हैं, और उन नरकों के संचालक हैं पति महोदय,

स्त्रियाँ बेचारी तो उनकी यातनाएँ सहने के लिये हैं। (व्यङ्ग से हँसती है।) पर भाई अशोक ने तो अपना वैवाहिक जीवन आदर्श बना रखा है। तुमने भाभी इनकी नयी पुस्तक नहीं पढ़ी—'स्वर्ग की झलक'!

रघु—(जो इस बीच में आलोचक बन, उमा की ओर देखता रहा है।) आप उस में दी गई युक्तियों से सहमत हैं ?

उमा—मैं उनके एक-एक शब्द से सहमत हूँ। पति पत्नी दो अलग-अलग हस्तियाँ हैं, न पत्नी पति...... .

[रघु फिर एक व्यङ्ग भरा कहकहा लगाता है। फिर जैसे व्यस्त होकर -]

रघु—अच्छा, भाभी नमस्कार! (उमा से) नमस्ते जी!

श्रीमती राजेन्द्र—कुछ क्षण तो ठहरो.........

रघु—(जाते-जाते मुड़ कर) नहीं भाभी, सुबह का घर से निकला हुआ हूँ, और फिर कल से ड्यूटी दिन की है।

[फिर नमस्कार करके चला जाता है। दोनों उसे जाते देखती हैं। फिर श्रीमती राजेन्द्र जो मौजे और बूट पहन चुकी हैं, उठती हैं।]

उमा—(जो अभी तक उधर ही देख रही है।) भाभी यह तो विचित्र आदमी है।

दृश्य तीसरा

[बहुत देर तक जागने का लाला गिरधारी लाल को अभ्यास नहीं। काम करते करते वैसे भी थके जाते हैं। इस लिये भाभी के ज़ोर देने पर ही उन्होंने खेलना आरम्भ किया था और एक दो बाजियाँ जोश से खेलीं भी; फिर आलस्य उन पर छाने लगा; रह रह कर अँगड़ाइयाँ लेते और घड़ी की ओर देखते और बेगार टालने की तरह खेले जाते। पर्दा उठते समय वे एक लम्बी अँगड़ाई लेते दिखाई देते हैं। आँखों में उनकी नींद की मस्ती है, सहसा दूर—कहीं घड़ियाल में टन-टन ग्यारह बजते हैं, साथ ही उनकी दृष्टि अँगीठी पर रखे हुए टाईमपीस पर जाती है और ऊब कर, वे खेल के बीच ही में, पत्ते मेज पर फेंक देते हैं।]

भाभी—ऐं, ऐं, यह बाजी तो खेल लो।

भाई साहिब—बस मुझे नींद आ रही है, वह तो जाने कहाँ चला गया है, (क्रोध से) दायित्त्वहीन ! चिन्ता नहीं कि......

भाभी—(जो शायद बाज़ी जीत रही हैं।) अच्छा, किन्तु हाथ के पत्ते तो.........

भाई साहिब—हटाओ जी !

(बिरजू प्रवेश करता है।)

बिरजू—बाबू जी, रसोई तो धो दी है, छोटे बाबू का खाना.........

भाई साहिब—इस समय तक जैसे वह भूखा ही बैठा होगा, ख दे उठा कर, फैंक देना सुबह बाजार में......हूँ......(बेजारी से सिर हिलाते हैं ।)

भाभी—जा अब खड़ा क्या देख रहा है ?

[तभी रघु तेज-तेज चलता आता है, और हैट मेज पर पटक कर जैसे सुख की साँस लेता है ।]

भाभी—मैं कहती हूँ, यहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा करते करते थक गए । तुम क्या करते रहे सारा दिन ?

रघु—(व्यङ्ग से हँस कर) "स्वर्ग की झलक" देखता रहा ।

भाई सहिब—(जो शायद कंसर्ट को स्वर्ग की झलक समझे हैं, तनिक तीखे स्वर में) तुम तो स्वर्ग की झलक देखते रहे, पर घर वाले........यदि वहाँ तुम्हें कंसर्ट देखनी थी तो कह तो जाते, खाना तुम्हरा पड़ा ठंडा हो रहा है ।

रघु—खाना मैं खा आया हूँ ।

भाई साहिब—(क्रोध से) वह तो मैं पहले ही कहता था । (जोर से चीख कर, बिरजू से) जा अब फैंक दे बाहर, कुत्तों को डाल दे, खड़ा क्या देख रहा है ?

(बिरजू चला जाता है ।)

—(बेजारी से सिर हिला कर) हूँ ! अपने दायित्व का जरा भी ख्याल नहीं ।

भाभी—(पति से) आते ही आप क्या शोर मचाने लगे

(रघु से हँसकर) हम तो बैठे हैं तुम्हें एक सुसमाचार सुनाने के लिये।

रघु—सुसमाचार!

भाभी—बूझो भला?

रघु—(कोट उतारते हुए हँस कर) मैं अगर ज्योतिषी होता ....

भाभी—मुँह मीठा कराओ तो बताएँ।

[रघु केवल हँस कर कुर्सी पर बैठ जाता है, और बूट के तस्मे खोलने लगता है।]

भाई साहिब—मैं तो यही चाहता था कि तुम वहीं रिश्ता करो, पर तुम्हारी भाभी, रामप्रसाद, तुम, बहुमत (हँस कर) मैं हारा, यद्यपि अपनी वर्तमान आर्थिक स्थिति को देख कर मैं तुम्हें खर्चीली ग्रेजूएट लड़की......

रघु—(तस्मे खोल कर एक पाँव की सहायता से दूसरे पाँव का बूट उतारता हुआ) ग्रेजूएट लड़की!

भाई साहिब—बात यह है कि मध्यवर्गीय आदमी के लिये अधिक पढ़ी-लिखी लड़की के साथ जीवन बिताना कठिन हो जाता है......

रघु—लेकिन भाई साहिब..............

भाई साहिब—शिक्षा को बुरा मैं नहीं कहता, पर जिस प्रकार की शिक्षा आज कल लड़कियों को मिल रही है और उसका जो प्रभाव पड़ रहा है उसकी ओर से आँखें बन्द नहीं की जा सकतीं।

रघु—(जुराबें उतारता हुआ) लेकिन भा ..

भाई साहिब—(अपने प्रवाह में) चाहिए तो यह कि अधिक पढ़ लिख कर आदमी और भी सीधा-साधा जीवन व्यतीत करना सीखे, जितना भरे, उतना ही भारी होता जाए, पर यहाँ तो लड़कियाँ जितना अधिक पढ़ती हैं उतनी ही अधिक छिछली होती जाती हैं।

रघु—(उठ कर खड़े होते हुए) लेकिन भाई साहिब ....

भाई साहिब—(उसी प्रवाह के साथ) गहने वे चाहे पहले से कम पहनें, पर उनके दूसरे खर्च इतने बढ़ जाते हैं कि बेचारे पति पर आफत आ जाती है। बहुत पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिये, तो आई० सी० एस०, ई० ए० सी ....अस्सी सौ रुपया पाने वाले के साथ ......

रघु—(जिसके संतोष का प्याला भर चुका है।) पर भाई साहिब यहाँ ग्रेजूएट लड़की की क्या बात है ?

भाई साहिब—तुम्हारी भाभी तुम्हारी इच्छा के अनुसार एक ग्रेजूएट लड़की देख आई हैं।

रघु—ग्रेज्यूएट !

(भाभी की ओर देखता है।)

भाभी—(अपने चुनाव की दाद चाहती हुई) बी० ए० में वह प्रथम श्रेणी में पास हुई है।

रघु—पर......

भाभी —और गाने में उसे निपुणता प्राप्त है और नृत्य में...

रघु—नृत्य में......?

(मुँह बाए रह जाता है।)

रामप्रसाद—नृत्य में तो पंजाब छोड़ बंगाल और महाराष्ट्र...

भाभी—(उल्लास से) बूझो कौन है ?

रघु—(जल कर) पर तुम्हें कहा किसने कि......

भाभी—मैं कहती हूँ वह साधारण ग्रेजूएट नहीं, उत्कृष्ट कलाकार है।

रघु—(और भी चिढ़ कर) मैं कहता हूँ यदि उत्कृष्ट से दो दर्जे ऊपर हो तो मुझे क्या ? आप लोगों ने मुझ से पूछा ?

भाभी—(तनिक क्रोध से) रघु !

रघु—(उदासीनता से) मैं किसी ग्रेजूएट से विवाह नहीं कर सकता

भाई साहिब—और इन्होंने तो शगुन भी ले लिया !

रघु—(चीख कर) क्या शगुन भी ले लिया ?

भाभी—मैं कहती हूँ, देखोगे तो मेरे चुनाव की प्रशंसा करोगे।

रघु—(उसी स्वर में) मैं नहीं देखना चाहता।

भाभी—जो तुम चाहते हो वह सब उस में है।

रघु—(उसी स्वर में) मैं क्या चाहता हूँ ?

भाभी—तुम जीवन-संगिनी चाहते थे।

रघु—(व्यङ्ग से) संगिनी, जो मेरे बोझ को हल्का करे,···कि उसे बढ़ा कर मेरी गर्दन तोड़ दे ! (हँसता है।)

भाभी—जो तुम्हारे साथ काम करे।

रघु—(व्यङ्ग से) मेरे साथ काम चाहे न करे, पर मेरे काम के मार्ग में बाधा न बने !

भाभी—जो चार मित्र आ जाएँ तो अन्दर न जा बैठे।

रघु—(उसी व्यङ्ग से) जो चाहे अन्दर जा बैठे, पर पल झ-
कते बीमार न बन जाए।

(फिर हँसता है।)

भाभी—लेकिन तुम दर्जन या रसोयिन नहीं चाहते!

रघु—(ऊँचे) पर मैं गृहिणी चाहता हूँ, तितली नहीं!

भाभी—मैं उमा की बात कर रही हूँ!

रघु—(एक व्यङ्ग पूर्ण कहकहा लगाता है।) उमा!—वह
र्गों के स्वप्न देखती है!

भाई साहिब—(जो कुछ नहीं समझते) आखिर मतलब क्या
तुम्हारा?

रघु—(गम्भीरता से) देखिए भाई साहिब, इस वाता-वरण
में पली, इतनी पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करने के लिये पुराने
संस्कारों को सर्वथा त्याग देना पड़ता है और दुर्भाग्य से मैं अभी
ऐसा नहीं कर सका। जिस स्वर्ग की वे झलक देखती हैं, वह हम
से भिन्न है।

भाई साहिब—तो फिर तुम कहीं विवाह करोगे भी।

रघु—मैं रक्षा ही से विवाह करूँगा, न होगा घर पर और
पढ़ा लूँगा!

[धोती उठा कर अन्दर पतलून बदलने के
लिये चला जाता है।]

भाभी—(परेशान) और मैंने शगुन लें लिया है।

भाई साहिब—(उल्लास को छिपा कर, सान्त्वना देते हुए

घु—(उसी व्यङ्ग से) जो चाहे अन्दर जा बैठे, पर पल क्ष-
ते बीमार न बन जाए।

(फिर हँसता है।)

भाभी—लेकिन तुम दर्जन या रसोयिन नहीं चाहते!

रघु—(ऊँचे) पर मैं गृहिणी चाहता हूँ, तितली नहीं!

भाभी—मैं उमा की बात कर रही हूँ!

रघु—(एक व्यङ्ग पूर्ण कहकहा लगाता है।) उमा!—यह
के स्वप्न देखती है!

भाई साहिब—(जो कुछ नहीं समझते) आख़िर मतलब क्या
तुम्हारा?

रघु—(गम्भीरता से) देखिए भाई साहिब, इस वाता-वरण
पली, इतनी पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करने के लिये पुराने
कारों को सर्वथा त्याग देना पड़ता है और दुर्भाग्य से मैं अभी
ऐसा नहीं कर सका। जिस स्वर्ग की वे झलक देखती हैं, वह हम
भिन्न है।

भाई साहिब—तो फिर तुम कहीं विवाह करोगे भी।

रघु—मैं रत्ना ही से विवाह करूँगा, न होगा घर पर और
ढा लूँगा!

[धोती उठा कर अन्दर पतलून बदलने के
लिये चला जाता है।]

भाभी—(परेशान) और मैंने शगुन ले लिया है।

भाई साहिब—(उल्लास को छि—

मैंने पहले ही कह दिया था कि यदि हम उत्तर को कहेंगे, तो वह जरूर दक्षिण को जाएगा।